ज्ञानामृत

जून, 1980
वर्ष 16 ❋ अंक 1

मूल्य 2.00

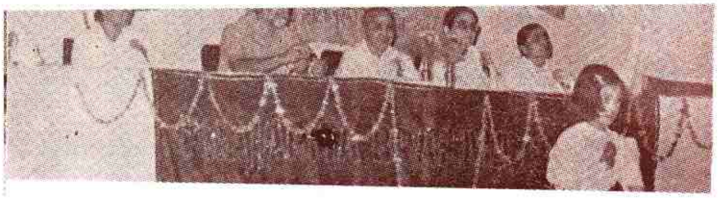

मेला' के उद्घाटन अवसर का है। वहां के कृषि विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० अमरीकसिंह जी मंच पर बीच में बैठे हैं। साथ में दीदी मनमोहिनी जी बैठी हैं। एक छोटी कन्या स्वागत गीत गा रही है।

गयाना में आयोजित 'आध्यात्मिक मेला' के अवसर पर शहर के प्रमुख भागों से एक विशाल शोभा-यात्रा निकाली गई। यह चित्र उसी अवसर का है। →

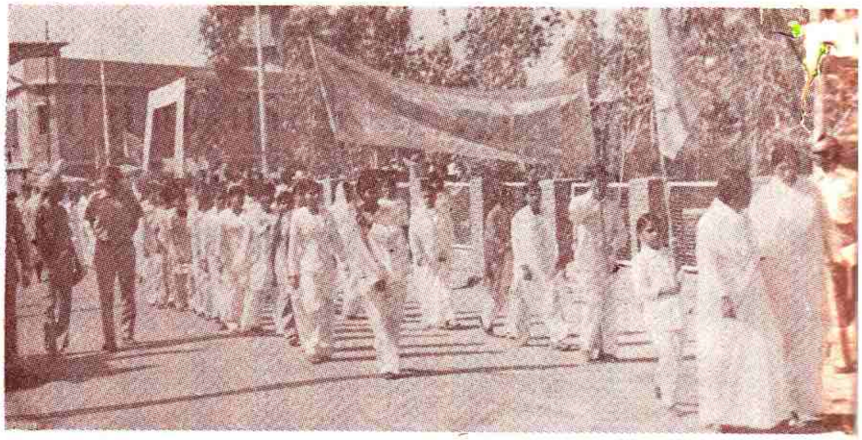

नीचे के चित्र में चण्डीगढ़ में आयोजित 'मानव का भविष्य' आध्यात्मिक सम्मेलन में वहां के चीफ कमिश्नर प्रवचन कर रहे हैं। मंच पर ब्र०कु० अमीरचन्द, ब्र०कु० अचल, स्वामी शास्त्रानन्द, ब्र०कु० हृदयमोहिनी एवं ब्र०कु० चन्द्रमणि जी बैठी हैं

↑ यह चित्र भोपाल में आयोजित 'चरित्र-निर्माण आध्यात्मिक मेला' की समाप्ति समारोह के अवसर का है। ब्र० कु० हृदय मोहिनी जी प्रवचन कर रही हैं। साथ में दीदी मनमोहिनी जी एवं राज्यपाल के सलाहकार भ्राता आर० के० त्रिवेदी जी बैठे हैं।

नीचे का चित्र घाटकोपर (बम्बई) सेवाकेन्द्र द्वारा आयोजित प्रदर्शनी का है। वहां के श्रममंत्री, आवास मंत्री तथा विधि मंत्री एवं न्याय मंत्री को ↓ ब्र० कु० रीटा चित्रों की व्याख्या दे रही हैं।

यह चित्र सिकन्दराबाद के आध्यात्मिक संग्रहालय का है। स्वामी गणपति सच्चिदानन्द को चित्रों की व्याख्या ब्र० कु० सन्तोष बहन दे रही हैं। →

आवश्यक सूचना

सभी ईश्वरीय सेवा-केन्द्रों की शिक्षिका बहनों से निवेदन है कि वे इस पत्रिका में छपे लेखों को यों का त्यों या थोड़ा-बहुत इनमें परिवर्तन करके इन्हें अपने नगर से निकलने वाले समाचार पत्रों के रविवारीय संस्करण (Sunday Edition) में या पत्रिकाओं में प्रकाशित करायें। वे किसी को एक विषय पर तो किसी को दूसरे विषय पर लेख भेजें। धूम्रपान वाले लेख को रेडियो वार्ता के लिए भी प्रयोग कर सकते हैं। जिस विषय पर दो लेख हैं, उन्हें या तो दो किस्तों में और या एक लेख एक पत्रिका में तथा दूसरा दूसरी पत्रिका में छपवायें और उसकी दो प्रतियाँ कमला नगर तथा एक पाण्डव भवन भेज दें— **ब्रह्माकुमार जगदीश चन्द्र**

अमृत-सूची

१. मुख पृष्ठ के चित्र से सम्बन्धित १
२. देखना, ईश्वरीय निमंत्रण से कोई एक भी वञ्चित न रह जाय (सम्पादकीय) २
३. ज्ञानयोग महायज्ञ ३
४. सिनेमा का प्रभाव ७
५. यह 'भ्रष्टाचार भस्माकारी यज्ञ' है— उसमें हरेक ने अपने किसी दुर्गुण की आहुति डालनी है १३
६. धुम्रपान या विषपान ? १४
७. मेरे भारत देश का क्या होगा ? (कविता) १७
८. मद्यपान दुःखों का आह्वान १८
९. अभी नहीं तो कभी नहीं (कविता) २०
१०. मांसाहार—नैतिक पक्ष २१
११. मांसाहार और भ्रांतियाँ २४
१२. इन्सान की इन्सानियत २६
१३. मानव होते यदि भगवान (कविता) ३०
१४. अपंगों तथा विकलांगों, कैदियों तथा हरिजनों की ईश्वरीय सेवा ३१
१५. सिनेमा घर केवल मनोरंजन स्थान नहीं हैं वे या तो शिक्षा स्थल या पतनालय हैं ३७
१६. अच्छी फिल्में ३९
१७. पीना बुरा शराब का ४०
१८. कैसे कहा जा सकता है कि मद्यपान विवेक तथा निर्णय शक्ति पर बुरा प्रभाव डालता है ? ४४

मुख पृष्ठ के चित्र से सम्बन्धित

आत्मानुभूति तथा ईश्वरानुभूति के लिए मनुष्य के लिये नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों का पालन करना तथा मन को दूषित करने वाली बातों से बचकर रहना, ज़रूरी होता है। कमल फूल इस चिह्न में उसी नैतिकता का प्रतीक है। इस कमल के पाँच ही 'दल' (पत्ते) हैं जो कि आत्मोन्नति के लिये पाँच सूत्रों के प्रतीक हैं। ये हैं—प्रतिदिन ईश्वरीय ज्ञान के अनुसार सहज राज योग का अभ्यास, (ii) किसी दिव्य गुण पर मनन, (iii) दूसरों की प्रतिदिन ईश्वरीय ज्ञान द्वारा आध्यात्मिक सेवा ताकि स्वयं को मिले प्रकाश से दूसरों की भी ज्योति जगे और उनका हमें आशीर्वाद मिले, (iv) प्रति दिन दूसरों के आध्यात्मिक कल्याण के लिये आर्थिक रूप से सहयोग देना और (v), एक पढ़ो, एक पढ़ाओ, के नियम के अनुसार स्वयं प्रतिदिन ज्ञान स्नान करना तथा दूसरों को भी ज्ञानामृत देना। इससे निश्चय ही आत्मिक प्रगति होगी।

ऊपर दिये चिह्न में जो १० किरणें हैं वे परमपिता परमात्मा शिव से मिले ज्ञान-प्रकाश के आधार पर प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय द्वारा बनाये गये '१०-सूत्री कार्य क्रम' की प्रतीक हैं, जिसे विश्व-कल्याणार्थ 'ज्ञानयोग महायज्ञ' का नाम दिया गया है।

सम्पादकीय

देखना, ईश्वरीय निमन्त्रण से कोई एक भी वञ्चित न रह जाय!

परमपिता परमात्मा ने ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग की जो शिक्षा दी है, उस से लगभग ८०,००० परिवारों ने जीवन में एक नई स्फूर्ति, एक नया उत्साह, एक नया उमंग, एक नया परिवर्तन पाया है। उन्हें ऐसा अमृत पिला दिया गया है जिससे कि वे अज्ञान-मूर्छा से जाग उठे हैं। जाग ही नहीं उठे, वे कर्म योग में ऐसे तो जुटे हैं। कि उनको देखते ही बनता है। वे शिव बाबा ही की आज्ञाओं को शिरोधार्य करते हैं और उसके लिए कुछ भी करने को तैयार हैं। उनके लिए न सर्दी रुकावट बनती है न गर्मी, न वर्षा और न आँधी। उन्हें एक ही लगन है कि हम अपने जीवन में पूर्ण परिवर्तन करके रहेंगे और शिव बाबा द्वारा दिए हुए सर्व सुखों की प्राप्ति के फार्मूले से दूसरों की सेवा में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देंगे और अपनी हड्डी-हड्डी भी दे देंगे। वे सभी एक मत, 'एकनामी', और एकरस होकर चलने का अलौकिक सूत्र मन में धारण किए हुए हैं। आज की महंगाई के ज़माने में वे लोग संयम और सादगी से जीवन व्यतीत करते हुए पेट पर पट्टी बांध कर भी अपने अन्य आत्मिक भाइयों को प्रभु का संदेश देने में लगे हैं। **उनका यह लक्ष्य है कि कोई भी आत्मा ऐसी न हो जिसको उस परम प्रिय परमपिता का संदेश मिलना रह जाय। इसलिए हाथों में निमन्त्रण लिए हुए कई मंजिल वाले मकानों में जा-जाकर, वे हर-एक की घंटी बजा-बजा कर उन्हें निमन्त्रण दे रहे हैं। कैसा निमन्त्रण ? ईश्वरीय निमंत्रण !!**

वे कोशिश करते हैं कि कोई भी समाचार पत्र ऐसा न रह जाय जिसमें शिव बाबा के ज्ञान योग महायज्ञ का निमंत्रण और सन्देश न छपे ताकि आने वाले समय में वह यह उलाहना न दे कि मुझे ठीक तरह से बताया ही नहीं गया था; हाय मैं ऐसा अभागा हूं कि परमपिता के बारे में कुछ भी न छाप सका ? "कोई भी एसी मनुष्यात्मा न रहे जिसे इस यज्ञाग्नि में विकारों की आहुति डालने का सन्देश मिलना रह जाये। इस बात को मन में रखते हुए अपने परम प्रिय परमात्मा के अनन्य स्नेह में रमे हुए यह रूहानी सेना निकली है विश्व में एक समूल क्रान्ति लाने जिससे कि इस संसार में आसुरीयता का, अभद्रता का, अपवित्रता का, दुःख एवं अशान्ति का नाम ही न रहे। यह सेना अहिंसक सेना है जो योग-बल से ही विकार रूपी शत्रु को जन-जन के सहयोग से परास्त करने में लगी है। शिव बाबा का स्वरूप ही इसका ध्वज है। उसकी महिमा का गीत ही इसका अन्तर्राष्ट्रीय गान है, सर्वस्व त्याग, सेवा और शान्ति ही इसके अमोध अस्त्र-शस्त्र हैं, शुभ भावना और शुभ कामना ही उनके वफ़ादार साथी हैं। वे सभी को स्नेह-भरे स्वर में ये कहते हैं—

"अति मीठे, अति प्यारे, शिव बाबा के प्रकाश स्वरूप पुत्रो, हमारे बहनो और भाइयो ! हमारे अनुभव की एक सादा और सीधी-सी बात सुन लो ! ५००० वर्ष पूर्व वाले अपने वचन के अनुसार शिव बाबा आये हैं, हमें पवित्रता-सुख-शान्ति का अतुल ख़ज़ाना देने और इस धरा को जीवन्मुक्त देवी देवताओं की धरणी बनाने। वे हमें ऐसा आनन्द, ऐसा आलोक, ऐसी परम शान्ति का वरदान दे रहे हैं कि जो अवर्णनीय है। अतः आप के प्रति सहज स्नेह से, हम आपको यह सूचना और सन्देश देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि अब यह सारा भारत देश, यह समूचा विश्व एक यज्ञ-स्थली है। यह शिव बाबा की अवतरण-भूमि तथा कर्म भूमि है; अब यहाँ कोई भी अशुद्ध आहार, व्यवहार और विचार न रहे। यह यज्ञ विश्व में शान्ति के लिए है; अतः अब यहाँ कोई भी अशान्त न हो। यह सभी मनोविकारों को समाप्त करने के लिये है; अतः अब कोई भी विकार किसी में न रहे। अब छोड़ो भोगों और वासनाओं को, तृष्णाओं को और चिन्ताओं को ! देखो, अब इस पापों की गठरी को इसमें डाल कर हल्के हो जाने में ही हित है। वर्ना समय बहुत थोड़ा है। यज्ञ की पूर्ण आहुति के बाद...!

—जगदीश

ज्ञान योग महायज्ञ

पिछले दो-ढाई हज़ार वर्षों में भारत में यज्ञ का बहुत महत्त्व रहा है। सभी धार्मिक अनुष्ठानों में यज्ञ करने की प्रथा-सी चली आ रही है। गीता में तो यहाँ तक कहा गया है कि **"प्रजापिता ब्रह्मा ने प्रजा भी यज्ञ द्वारा ही रची।"**[1] उन्होंने कहा—"हे मनुष्यों, इस यज्ञ द्वारा आपकी परस्पर सद्भावना बढ़े तथा आप वृद्धि और खुशहाली को प्राप्त हों।[2] ब्रह्मा को यज्ञ पति (अथवा यज्ञ पिता) भी कहा गया है। प्रश्न उठता है कि यज्ञ का इतना महत्त्व क्यों है? और ब्रह्मा जी ने कौन-सा यज्ञ रचा जिस द्वारा प्रजा रची गई?

इस प्रसंग में एक बात तो स्पष्ट है ही कि प्रजा-पिता ब्रह्मा ने जिस यज्ञ द्वारा प्रजा रची होगी वह यज्ञ कोई अग्नि या घी द्वारा होने वाला होम नहीं रहा होगा क्योंकि अग्नि तो चीज़ों को जलाने वाली है, उस द्वारा प्रजा रची जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए स्वयं गीता में ही कहा हुआ है कि "यज्ञ तो अनेक प्रकार के हैं परन्तु देव यज्ञ (हवन आदि) से ज्ञान यज्ञ ही सर्व श्रेष्ठ है।[3] क्योंकि सभी कर्मों का समापन ज्ञान में ही होता है।[4] और ज्ञान ही पवित्रता का सर्व श्रेष्ठ साधन है।[5] अतः स्पष्ट है कि प्रजा-पिता ब्रह्मा ने ज्ञान यज्ञ ही रचा होगा और ज्ञान द्वारा उस समय के मनुष्य को पवित्र बनाने का कर्म ही "प्रजा रचना" कहलाया होगा। आज ज्ञान यज्ञ को लोग आधुनिक भाषा में 'विद्यालय', 'विश्वविद्यालय,' 'शिक्षा स्थान' आदि नाम देते हैं क्योंकि यद्यपि स्कूलों में भी ज्ञान ही दिया जाता है तथापि वह ऐसा ज्ञान नहीं है जिस ज्ञान को गीता में ऐसी 'अग्नि' कहा गया है जिससे मनुष्य के मनोविकार दग्ध हों,[6] जिससे वातावरण शुद्ध हो और जिससे यज्ञ करने वाला आत्मन् पवित्र बने। परन्तु प्रजापिता ब्रह्मा ने जो ज्ञान अग्नि वाला यज्ञ रचा था, उसका आज तक गायन और शास्त्रों में वर्णन चला आता है क्योंकि उससे मनुष्यों में सद्भावना बढ़ी[7] उनका कल्याण हुआ।[8]

गीता में यह भी कहा गया है कि कर्म ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ[9] और ब्रह्मा को अविनाशी परमात्मा ने उत्पन्न किया।[10] स्पष्ट है कि प्रजा का आदि पिता होने के नाते ब्रह्मा ने मनुष्यों को आत्मा एवं परमात्मा का तथा श्रेष्ठ कर्म का ज्ञान दिया और सर्वोत्तम कार्य करके दिखाया और ब्रह्मा को यह ज्ञान का मरजीवा जन्म परमात्मा ने दिया।

आज कुछेक शास्त्रवादी लोग यज्ञ के बारे में उप-रोक्त बातों को एक ओर रखकर हर गृहस्थ को पाँच प्रकार के यज्ञ करने के लिए कहते हैं। उसमें से एक है—**ब्रह्म यज्ञ** जिसका ही दूसरा नाम 'ज्ञान-यज्ञ' है। दूसरा है **पितृ यज्ञ** जिस द्वारा ऋषियों, पितरों आदि को तृप्त करने या माता-पिता की सेवा करने का यत्न किया जाता है। तीसरा **देव यज्ञ** अर्थात् अग्नि इत्यादि जगाकर उसमें तिल, जौ इत्यादि को होम करके उस द्वारा देवताओं से अल्पकाल का कोई फल प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। चौथा है **भूत यज्ञ** जिसमें किसी पशु आदि को बलि करके कोई सफलता या

---

१. सहयज्ञाः प्रजासृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक (गीता-३/१०)
२. परस्परं भावयन्तः श्रेयः··· (गीता-३/११)
३. श्रेयान् द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञान यज्ञ परंतप (गीता-४/३३)
४. सर्वं कर्मोखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते (गीता-४/३३)
५. न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ४/३८

६. ज्ञानग्नि दग्ध कर्माणां···४/१६
७. परस्परम् भावयन्तः···३/११
८. श्रेयः परमवाप्स्यथ···३/११
९. कर्म ब्रह्मोदभवं विद्धि··· (गीता ३/१५)
कुछ लोग इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि कर्म ब्रह्म से उत्पन्न हुआ और कुछ कहते हैं कि ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ परन्तु वास्तव में ब्रह्मा ही ठीक है क्योंकि आदर्श कर्म करके ही दिखाना पड़ता है।
१०. ब्रह्माक्षरस्मुद्भवम् (३/१५)

किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। पाँचवा है अतिथि यज्ञ, अर्थात् अतिथियों की सेवा करना। वास्तव में ये सभी यज्ञ ज्ञान यज्ञ अथवा योगाभ्यास में समाये हुए हैं। स्वयं गीता में ही कहा गया है कि ये सभी कर्मकाण्ड ज्ञान में आने से समाप्त हो जाते हैं।[११] गीता में अनेक प्रकार के यज्ञों में से ज्ञान तथा योग रूपी अग्नि वाले यज्ञ[१२] का भी वर्णन है और भगवान की वाणी को समझने से मनुष्य इसी निश्चय पर पहुँचता है कि किन्हीं जीते-जागते शरीरधारी पशुओं की बलि नहीं देनी न ही लकड़ी, घी, सामग्री की अग्नि की बात है बल्कि ज्ञान योगाग्नि प्रदीप्त करके जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि पशुत्व है, उसे ही स्वाहा करना है।[१३] गीता में इन्हें छोड़ना ही योगी के लक्षण माना गया है। प्रारम्भ में योग की चर्चा करते-करते ही[१४] इन यज्ञों का उल्लेख किया गया है और फिर इस ज्ञान-यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ अर्थात् 'महायज्ञ' (श्रेष्ठ यज्ञ) कहा गया है।[१५] इसका भाव यही हुआ कि भगवान ने 'ज्ञान योग महायज्ञ' रचा था जिसमें मनुष्यात्माओं द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि की आहुतियाँ डलवाई गईं थीं।

आज भी जो लोग हवन करते हैं वे उसमें कोई चीज होम करते समय कहते हैं—"इदम् अग्नाये इदं न मम्" अर्थात् "यह अग्नि को दे दिया, अब यह मेरा नहीं रहा।" वे अग्नि को ज्योतिस्वरूप परमात्मा का, जो पवित्रकारी है और बुराइयों को दग्ध कर देता है, प्रतीक मानते हैं। अतः वास्तव में इन बुराइयों को जिनसे ही हमारा जीवन दुःखी हुआ है, परम-पावन परमात्मा को दे देना ही सच्चा यज्ञ है। ऐसा यज्ञ करने से ही सारे वातावरण में सुगन्धि फैलेगी। इससे ही परस्पर प्रीति भी बढ़ेगी और देश-देशान्तर में समृद्धि भी होगी। आज स्थान-स्थान पर इतने तो कारखाने लग चुके हैं और डीज़ल, पेट्रोल आदि से चलने वाले वाहन वातावरण में इतने तो विषैले तत्त्व फेंक रहे हैं तथा जनसंख्या के बढ़ जाने से और जगह-जगह वन, उपवन, वनस्पति और पेड़ पौधों को नष्ट कर देने से इतना तो प्रदूषण हो गया है कि किसी एक-आध के घी और सामग्री को होम करने से वायु-मण्डल में भला कितनी सुगन्धि फैलेगी और फिर जब आजकल तीन-चौथाई से ज्यादा जनता को तो खाने के लिए भी शुद्ध घी नहीं मिलता और लोगों को रहने के लिए भी स्थान प्राप्त नहीं तो वे कहाँ और कैसे 'देव यज्ञ' या हवन करें? वास्तविक देव यज्ञ तो वह है कि योगाग्नि प्रज्ज्वलित करके उसमें ज्ञान घृत डाल-कर दैवी गुणों की सामग्री से वातावरण को सुगन्धित एवं शुद्ध किया जाए जिससे कि जगत ही देवस्थान हो जाए।

कौन-से मन्त्र द्वारा अग्नि प्रगट की जा सकती है?

कहते हैं कि पहले ऋषि ऐसे महान थे कि वे मन्त्र बल से ही अग्नि प्रज्जवलित करते थे। अब देखा जाय तो वास्तव में ज्ञान का हरेक वाक्य ही मन्त्र है क्योंकि उसमें कोई-न-कोई मन्त्रणा (राय अथवा मार्गदर्शन) दी होती है। ये भी बात मानी हुई है कि जैसे सूर्य की किरणें एक बिन्दु पर एकाग्र होने से अग्नि रूप धारण कर लेती है वैसे ही मन को ज्ञान सूर्य परमात्मा पर एकाग्र करने से ऐसी शुद्ध आध्यात्मिक अग्नि प्रगट होती है जिसे 'योगाग्नि' कहा जाता है। उस सूक्ष्माग्नि से मनुष्य के विकार अथवा विकर्म दग्ध हो जाते हैं। इसलिए मनमनाभव (भगवान की यह आज्ञा कि 'मन मुझमें लगा') ऐसा महा-मन्त्र है जिससे महायज्ञ की अग्नि अथवा योगाग्नि प्रज्जवलित हो जाती है।

अश्वमेध यज्ञ

प्राचीन आख्यानों में अश्वमेध यज्ञ का भी वर्णन आया है। उल्लेख मिलता है कि चक्रवर्ती राजा बनने के लिए एक श्याम वर्ण अश्व छोड़ दिया जाता, जो उसको पकड़ता, उससे युद्ध करके उसे परास्त किया जाता और फिर उस अश्व को एक निश्चित क्रिया के बाद बिधि अथवा परिपाटी से यज्ञाग्नि में होम कर दिया जाता। वास्तव में यह उस यज्ञ का विकृत ही रूप है। घोड़े दौड़ाने से चक्रवर्ती राज्य की प्राप्ति भला कैसे हो सकती है! यह अर्थ का अनर्थ इस कारण हुआ है कि हर भाषा में एक शब्द के कई अर्थ होते हैं और मनुष्य की जैसी बुद्धि हो वह उसी प्रकार के अर्थ को उठा लेता है। संस्कृत का 'अश्व' शब्द घोड़े का भी वाचक है, 'राष्ट्र' का भी और 'घोड़ा'

---

११. गीता (४/३३)
१२. क आत्म संयम योगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते (४/२७)
ख योग यज्ञा:···
स्वाध्याय ज्ञानयज्ञाश्च···४/२८
१३. ४/२७ १४. ४/१ से ३ १५. ४/३३

शब्द लाक्षणिक रूप में 'मन' के लिए भी प्रयोग किया जाता है क्योंकि प्राचीन काल में जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए घोड़ा ही सबसे तेज़ वाहन था वैसे ही तीव्र गति से कभी इधर, कभी उधर भागने के कारण मन को भी घोड़े के समान माना जाता है। 'अश्व' अथवा 'घोड़ा' शब्द आज भी अनेक भाषाओं में लाक्षणिक रूप में ऐसे ही अर्थों में प्रयोग होता है। उर्दू भाषा में एक स्थान से दूसरे स्थान पर चिट्ठी भेजने के लिए 'कागज़ी घोड़ा दौड़ाना'—यह मुहावरा प्रयोग किया जाता है। वास्तव में कागज़ को कोई घोड़े का रूप नहीं दिया होता परन्तु आज डाक के ज़माने में चिट्ठी भी ऐसी तेज़ रफ़्तार से जाती है जैसे कभी राजा के संदेशवाहक का घोड़ा जाया करता था। इसी प्रकार अंग्रेज़ी भाषा में एक कहावत है—"If wishes were horses, only fools would ride them." इसका भाव यह है कि इच्छायें ऐसे घोड़े के समान हैं जिनकी सवारी कोई भी बुद्धिवान व्यक्ति नहीं करेगा बल्कि मूर्ख ही करेगा। यह इसलिए कहा गया है कि इच्छायें बेलगाम होती है; वे तीव्र गामी घोड़े की तरह आगे बढ़ती ही जाती हैं और यदि कोई ऐसा घोड़ा हो कि वह चले तो बहुत तेज रफ़्तार से परन्तु उसको रोकने के लिए लगाम हो ही न तो आप ही सोचिये कि ऐसे घोड़े पर तो 'मत का मूढ़' आदमी ही चढ़ेगा। अतः वास्तव में मन को ही यहाँ घोड़े से उपमा दी गई है क्योंकि लोग प्रायः कहते भी हैं कि यह मन घोड़े की तरह बहुत तेजी से भागता है। इसी प्रकार 'मेध' शब्द का अर्थ 'वध करना' भी है और 'मेध' बुद्धि को भी कहते हैं, जो व्यक्ति बुद्धिवान हो, उसे 'मेधावी' कहते हैं। अतः बुद्धि से मन रूपी घोड़े को जो काबू कर लेता है, ऐसा यज्ञ करने वाला व्यक्ति ही चक्रवर्ती राज्य प्राप्त करता है। आज भी यदि किसी व्यक्ति का अपने मन, वचन, कर्म पर अधिकार नहीं होता तो लोग प्रायः कहते हैं कि 'यह तो बेलगाम घोड़ी है।' यदि कोई व्यक्ति अधिक बोलता ही चला जाता है तो लोग कहते हैं कि 'ज़बान को लगाम लगाओ !' परन्तु यह अजीब ही खेल है कि एक समय ऐसा आया जब लोगों ने घोड़े को काट-काट कर यज्ञ करने शुरू किये। परिणाम यह हुआ कि ऐसे हिंसक और घृणोत्पादक यज्ञों को देखकर बुद्ध मत व जैन मत का उदय हुआ जिसमें हिंसा का तो निषेध किया ही गया, साथ-साथ यज्ञ के प्रति भी दुर्भावना पैदा की गई क्योंकि जो संसार में सद्भावना, अहिंसा, त्याग और निर्विकार विचार पैदा करने वाला 'ज्ञान यज्ञ' एवं 'योग यज्ञ' था अब उसका स्थान ऐसे यज्ञों ने ले लिया था।

परन्तु हम ऊपर जिस 'ज्ञान योग महायज्ञ' का वर्णन कर आये हैं यदि इसके भाव को लोग ठीक प्रकार से समझें तो यह एक **सार्वभौम यज्ञ है।** इसमें कोई हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म या मुस्लिम धर्म की भेद-भावना बीच में नहीं आ सकती क्योंकि यह तो आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा तथा ईश्वरीय स्मृति के द्वारा अपने स्वार्थ तथा मनोविकारों को होम करने रूप यज्ञ है जिसका समर्थन किन्हीं-न-किन्हीं शब्दों में अन्य धर्मों में मिलता है। ज्ञान ही को बुद्ध मत व जैन मत में 'सम्यक विवेक' कहा गया है और ईसाई मत में 'लाईट' अथवा ट्रूथ (Truth) की संज्ञा दी गई है। कहा गया है 'The Knowledge shall lead you to the Truth and the Truth shall liberate you.' इसी को मुस्लिम धर्म में 'इल्मे मारफ़त' या 'कश्फ़' कहा गया है। इसी प्रकार योग को किसी मत में 'तपस्या', किसी में 'इश्के हकीकी', किसी में 'Surrender to God' आदि नाम दिये गये हैं और हरेक मत में बुराई को छोड़ने और अच्छाई को अपनाने की बात तो कही ही गई है, इसी को 'ज्ञान यज्ञ' कहा गया है जो सर्व यज्ञों में श्रेष्ठ होने के कारण 'महायज्ञ' है।

यह अनोखा यज्ञ

अब जबकि संसार में इन्द्रिय लोलुपता, आसुरी सम्पदा तथा योग-भ्रष्टता ही प्रधान हैं तब पुनः सत-युगी, दैवी सम्पदा-युक्त, योगारूढ़ प्रजा रचने के लिये पुनः प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा अविनाशी परमपिता परमात्मा ने 'ज्ञान योग महायज्ञ' रचा है। संसार में यह परम्परा है कि जब कोई भी यज्ञ रचा जाता है तो अपने मित्रों, सम्बन्धियों, पड़ोसियों आदि सभी को निमन्त्रण दिया जाता है कि वे यज्ञ में पधारें। अब परमपिता परमात्मा ने भी जो यज्ञ रचा है, उसके लिए वे सभी मनुष्यात्माओं को आमन्त्रित कर रहे हैं; पिता का अपने सभी पुत्रों को निमन्त्रण देना स्वाभाविक ही है। यज्ञावसर पर जो भी आते हैं, वे छोटी-बड़ी आहुति तो डालते ही हैं। परमपिता परम-आत्मा कहते हैं—"वत्सो, सभी इस 'ज्ञान योग महा-

यज्ञ' में आहुति दो।" इसमें घृत, जव आदि के डालने की बात नहीं है, इसमें तो अपने संस्कारों की अशुद्धियों, मन के अशुद्ध संकल्पों आदि की आहुति दे डालो ताकि सारे संसार का वातावरण स्थायी तौर से शुद्ध हो जाये। 'हे वत्सो, निकट भविष्य में ही इस आलौकिक यज्ञ में अन्तिम आहुतियाँ पड़ने ही वाली हैं। तब यह न कहना कि परमपिता ने यज्ञ रचा और हमें निमन्त्रण ही न मिला और हम आहुति ही न डाल सके। इस अनोखे यज्ञ कार्य में सम्मिलित होकर अब इसमें अपने मनोविकारों की आहुति दे डालो ताकि फिर से पूर्ण सुख के दिन लौट आयें। वत्सो, क्या आप इस यज्ञ की सफलता की शुभ कामना नहीं करेंगे? क्या आप इसमें सम्मिलित नहीं होंगे? क्या आप इस में आहुति नहीं डालेंगे? वत्सो, यह यज्ञ सारे कल्प में एक ही बार प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा सतयुगी प्रजा रचने के समय होता है और यही वह अश्व मेध अविनाशी यज्ञ है जिस द्वारा मुक्ति और जीवन्मुक्ति के फल की प्राप्ति कही गयी है। यही वह यज्ञ है जिसे 'राजसूय यज्ञ' कहा गया है क्योंकि इसमें कर्मेन्द्रियों तथा मन पर राज्य प्राप्त करने से मनुष्य सतयुगी काल में चक्रवर्ती नारायण पद अथवा राज्य पद पाता है। अतः समय को पहचानते हुए अब एक बार इस कल्याणकारी महायज्ञ में अपने सारे मनोमालिन्य की आहुति दे डालो।"

यज्ञ में आहुतियाँ

जब किसी स्थान पर यज्ञ होता है तो यज्ञ भूमि में ब्रह्मचर्यादि नियमों का पालन किया ही जाता है और यज्ञ भूमि की पवित्रता को कायम रखा ही जाता है। यज्ञ करने वाले मन, वचन, कर्म की पवित्रता का संकल्प लेते हैं और यज्ञ की सफल समाप्ति के लिए पूर्ण शुद्धि बरतते हैं। अतः अब जबकि परमपिता परमात्मा ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा विश्व में पवित्रता एवं शान्ति की स्थापना के लिए 'ज्ञान योग महायज्ञ' रचा है तब हरेक आत्मा को चाहिये कि वह मांस, मदिरा, धूम्रपान, अश्लील साहित्य का अध्ययन आदि छोड़ें और मन-वचन-कर्म से पवित्रता का पालन करे क्योंकि इस समय तो यह सारा विश्व ही यज्ञ-भूमि है। यज्ञ करने वाला सूत्र तो बाँधता ही है। ये दस सूत्री कार्यक्रम ही सूत्र है जो यज्ञ करने वालों को बाँधना है। ऐसे पवित्रता, योग एवं सेवा के सूत्रों में बंध कर यज्ञ करने से यज्ञ द्वारा ऐसी अग्नि प्रज्ज्वलित होगी जिससे विश्व की सारी अशुद्धियाँ भस्म हो जायेंगी और भारत में देव वंश का अभ्युदय होगा तथा विश्व में पवित्रता, शान्ति एवं सुख की स्थापना होगी।

गीत

अमृत पान करो, मद्य पान तजो
शिव अमृत पान कराते हैं
पीकर जिस पावन अमृत को
दानव-मानव बन जाते हैं।
अमृत पान करो···
इन व्यसनों में पड़कर तुमने, मानव की शान गँवाई
अब तो शिव ने खुद आकर, अमृत की धार बहाई
मन में अमृत भर कर अब, तन, मन को निर्मल करो,
अमृत पान करो···
भारत की तुम शान हो प्राणों, देवों की सन्तान हो,
तुमको राह दिखानी जग को, भूतल के आधार हो
इस देह मन्दिर में ना तुम, सुरा पान का भोग करो,
अमृत पान करो···

ये मद्य नशा तो क्षण भंगुर, दुखदाई और बुद्धि नाशक
तन, मन धन को ये भ्रष्ट करे, जीवन में होता है घातक
ईश्वरीय नशा पीकर मानव, सुख शान्ति का वरण करो
अमृत पान करो···
इस सुरा पान ने तो अब तक, कितनों के बाग सुखाये हैं
खिलते थे पुष्प जो आँगन में, वो अब सब मुरझाये हैं
छोड़ो इस तुच्छ कर्म को अब, निज जीवन में सुगन्ध भरो,
अमृत पान करो···

सिनेमा का प्रभाव

वैज्ञानिकों ने अब तक जो आविष्कार किये हैं, उन आविष्कारों में से हरेक का अपना अलग ही महत्त्व है। कुछ आविष्कार तो ऐसे हैं कि जिनसे मनुष्य की सुख-सामग्री बढ़ी है और उसके कार्य की गति काफ़ी तीव्र हुई है परन्तु कुछ आविष्कार ऐसे भी हैं जो संसार-भर को ध्वस्त करने की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार विज्ञान के अन्य आविष्कारों की भी अन्यान्य श्रेणियाँ बनाई जा सकती हैं, परन्तु इन सबसे सिनेमा या मूवी (चलचित्र) रूपी आविष्कार अपने प्रभावों और निहित सम्भावनाओं (Potentialities) के कारण अपने में एक अलग ही श्रेणी का आविष्कार है। **उसका यदि सदुपयोग किया जाए तो उससे एक नई सभ्यता का उदय भी हो सकता है और यदि उससे जन-मानस को विकृत किया जाए तो सैंकड़ों-हजारों वर्षों की संस्कृति को कुछ ही दशकों में मलियामेट भी किया जा सकता है।**

हमने ऊपर विनाशकारी आविष्कारों के बारे में भी बात कही है। एटम बम उसी श्रेणी का आविष्कार है। परन्तु एटम बम को हर आये दिन किसी नगर पर नहीं फेंका जाता। दूसरी प्रकार के आविष्कारों में बिजली का नाम लिया जा सकता है; परन्तु बिजली से तो कारख़ाने चलते हैं, इससे हर कारख़ाने में सैकड़ों-हज़ारों लोगों को रोज़गार मिलता है और उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन होता है और इसके हज़ारों अन्य प्रयोग होते हैं। बिजली का प्रायः मानव-समूह को हानि पहुँचाने के कार्य में प्रयोग नहीं किया जाता; परन्तु सिनेमा की तो बात ही अलग है। इसके तो दिन-भर में चार-चार, पाँच-पाँच शो होते हैं और हमारे देश में तो लोग लम्बी-लम्बी क्यू (queue) में खड़े होने की असुविधा स्वीकार करके भी बड़े चाव से अँधेरे हॉल में जाकर बन्द हो जाना स्वीकार करते हैं। कहा जाता है कि वे वहाँ मनोरंजन (Entertainment) के लिए जाते हैं। परन्तु मनोरंजन के नाम पर आज जो-कुछ वहाँ दिखाया जाता है, उसका प्रभाव तो जन-मानस पर अच्छा नहीं पड़ता। यों फ़िल्म शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण साधन है क्योंकि यह रुचिकर तरीके से नेत्रों अथवा कानों के द्वारा मनुष्य के मन पर प्रभावशाली रीति से किसी बात को पहुँचा सकता है। परन्तु आज हमारे देश में यह मुख्य तौर पर काम एवं हिंसोत्तेजक सिनेमा के रूप में प्रयोग हो रहा है और उसमें जो-कुछ दिखाया जाता है, वह निश्चय ही हमारी प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति के लिए घातक है।

अच्छे मनोरंजन की विशेषतायें

वास्तव में मनोरंजन कोई बुरी चीज़ नहीं है बल्कि जीवन का एक आवश्यक अंग है। इससे मनुष्य फिर-से एक ताज़गी का अनुभव करता है। मनोरंजन आज के चिन्ता और तनाव-भरे वातावरण से छुटकारा पाने का एक साधन है परन्तु मनोरंजन अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। हमारे विचार में अच्छे मनोरंजन निम्नलिखित मर्यादाओं का पालन करते हैं—

१. वे मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, नैतिक व आध्यात्मिक पहलू में उन्नति करते हैं। कम-से-कम वे मनुष्य की नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति के घातक नहीं होते।

२. वे मनुष्य के मन को उत्तेजना देने वाले, उसकी वासनाओं को भड़काने वाले, उसकी सादगी, सरलता और मितव्ययता के लिए हानिकर नहीं होते।

३. वे मनुष्य के लिए आमोद-प्रमोद, हास्य-परिहास या उसकी उछल-कूद और खुशी के साधन तो होते हैं परन्तु वे ऐसे नहीं होते कि जिन्हें मनुष्य अपने माता-पिता, अध्यापकों या सम्माननीय महानुभावों की उपस्थिति में प्रयोग न कर सके।

४. उनमें मातृ-शक्ति का अनादर नहीं होता।

इस बात से कोई भी इन्कार नहीं करेगा कि ऐसे मनोरंजन श्रेयस्कर नहीं होते जिनसे संसार में अमर्यादा और उच्छृङ्खलता फैले और जो मनुष्य को हिंसा, ख़र्चीले और थोथे फ़ैशन, भोग-तृष्णा,

कुटिलता आदि-आदि के संस्कार डाले क्योंकि इससे अच्छे समाज की नींव ही हिल जाती है।

हम इस बात को एक-आध उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं—

एक ज़माना था जब रोम के रोमन कैथोलिक लोग कैथोलिक मत के न मानने वाले कुछ विधर्मियों को भूखे शेर के सामने डाल देते थे और इस दृश्य को देखकर खूब खिलखिलाते थे। गोया उनके लिए वह एक आमोद एवं मनोरंजन का साधन था। परन्तु स्पष्ट है कि वास्तव में वे मनुष्य में निर्दयता, क्रूरता एवं धार्मिक-संकीर्णता के संस्कारों को पक्का करने वाला एक मीठा विष था जिससे अन्ततोगत्वा वह सभ्यता ही नष्ट हो गई। आज कोई भी अच्छे स्वभाव का व्यक्ति रोम के कैथोलिक्स के तत्कालीन इस कथित मनोरंजन को ठीक नहीं मानेगा।

इसी प्रकार, आधुनिक काल में हम अपने देश में हर वर्ष देखते हैं कि होली के अवसर पर कुछ लोग रंग डालने के अतिरिक्त अभद्र अट्टहास, असभ्य छेड़-छाड़ एवं अमानुषिक हरकतें करते हैं। वे बस में जाते यात्रियों पर अचानक से रंग या पानी के गुब्बारे मारते हैं, प्लेटफ़ार्म पर खड़ी होने वाली गाड़ियों पर पथराव करते हैं, राह-जाती कन्याओं और बहनों पर अपने मकान की छतों पर से रंग डालकर छिप जाते हैं या गलियों में उनके सामने मर्यादा-विरुद्ध हाव-भाव प्रगट करते हैं और, अच्छे कपड़े पहनकर किसी आवश्यक कार्य पर जाने वाले किसी व्यक्ति पर भी पिचकारी की बौछार या गुब्बारों द्वारा आक्रमण करते हैं जिससे उस व्यक्ति के वस्त्र बिगड़ जाते हैं और उसे गन्तव्य स्थान पर जाने के इरादे को छोड़ना पड़ता है। स्कूटरों पर बैठे हुए यात्रियों तथा कारों व बसों की रंग से वे ऐसी बुरी हालत कर देते हैं कि बसों आदि को फिर-से ठीक करने के लिए देश का लाखों-करोड़ों रुपया बेकार जाता है परन्तु कुछ उच्छृङ्खल प्रकार के व्यक्ति इस मौके को मनोरंजन का एक साधन मानकर दुःखित होने वाले लोगों पर खूब खिलखिलाते हैं! अपने मकान की ऊपर की अटारी में खड़े होकर वे रस्सी से हुक (hook) या काँटा लटकाकर बुजुर्गों की टोपी या पगड़ी को ऊपर खींच लेते हैं। कारों, बसों और स्कूटरों के पहियों की हवा निकाल देते हैं जिससे उनका गमनागमन ही रुक जाता है। ऐसी उच्छृङ्खलता को देखकर सरकार को पुलिस तैनात करनी पड़ती है। इसके बावजूद भी कई स्थानों पर मनोरंजन-मनोरंजन में छुरे चलने की वारदातें हो जाती हैं। इस प्रकार यह मनोरंजन उनके लिए तो दिल बहलाने का साधन हो सकते हैं परन्तु कोई भी शिष्ट व्यक्ति इसको अच्छा नहीं समझेगा।

मनोरंजन केवल मनोरंजन नहीं, वह संस्कारोत्पादक भी है

इसके अतिरिक्त हमें यह याद रखना चाहिए कि मनुष्य जो भी कर्म करता है, चाहे वह उसका व्यावसायिक कर्म हो, चाहे वह मनोरंजन हो, चाहे वह पारिवारिक जीवन का कोई कर्म हो, वह अपने पीछे अपने कर्त्ता के मन पर एक संस्कार छोड़ जाता है। **अतः मनुष्य मनोरंजन भले ही करे परन्तु उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक-दो घण्टे में किया गया मनोरंजन चिरकाल के लिए उसे किसी बुरी आदत का गुलाम न बना ले।** वह उसके मन का रंजन करने के साथ-साथ उस पर काला अंजन न पोत जाए। वह मनोरजन 'आतम-भंजन' अथवा 'आतम-वञ्चन' का रूप न लेले।

इस सबको ध्यान में रखते हुए जब हम आज के सिनेमा पर विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि उसमें कई ऐसे तत्त्व होते हैं जो मनुष्य के मन को बुरे संस्कार देकर जाते हैं और जो अच्छे मनोरंजन की बताई हुई उपरोक्त विशेषताओं के विपरीत होते हैं। ये तत्त्व उसमें ऐसे कलात्मक तरीके से प्रयोग किये गये होते हैं कि फ़िल्म देखने वाले को तत्काल तो फ़िल्म एक मनोरंजन ही का साधन मालूम होती है परन्तु बाद में कोई अवसर आने पर जब सस्कार रूप में उसके मन में रहे हुए ये चित्र उसे किसी कुकृत्य के लिए अपनी कठपुतली बना लेते हैं तब उसे मालूम पड़ता है कि वह फ़िल्म उसके लिए कितनी हानिकारक सिद्ध हुई।

देश के युवकों को ब्रह्मचर्य की प्रेरणा देने की बजाय पतन की ओर ले जाने का कारण

१. आज की फ़िल्मों में एक बहुत बड़ा स्थान कामोत्तेजक सम्वादों, भाव-भंगिमाओं, प्रेमालिंगनों के दृश्यों और गीतों को दिया जाता है और 'काम' को नाम 'प्रेम' (Love) का दिया जाता है। कथानक

में ऐसी परिस्थिति पैदा की जाती है जिससे किसी युवक और युवती में परस्पर वासनात्मक आकर्षण हो जाए। फिर, उनके किसी-न-किसी प्रतिद्वन्दी को दिखाया जाता है और फिर जब उनके प्रणय में बाधा पड़ती है तो उसको पार करने के लिए वे कूटनीतियाँ और चालें चलते हैं और फिर भी यदि सफलता न हो तो वे हत्या भी कर लेते हैं !

इस प्रकार 'प्रेम', जो एक पवित्र एवं दिव्य गुण है, उसके विकृत एवं वासनात्मक रूप को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इस सब का परिणाम यह होता है कि जो युवक और युवतियाँ ऐसे दृश्यों को देखते हैं उनमें भी ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और वे भी ऐसे पंतेड़े इख्तियार कर लेते हैं। ऐसे समाचार कई बार समाचार पत्रों में छपे भी हैं। उदाहरण के रूप में कुछ समय पहले ब्लिट्ज़ में एक घटना प्रकाशित हुई थी। उसमें बताया गया था कि एक हायर सेकेण्डरी स्कूल के हॉस्टल में किशोरावस्था के दो विद्यार्थी एक कमरे में इकट्ठे रहते थे। उनके साथ वाले कमरे में एक अध्यापिका रहती थी जिसकी नियुक्ति उस स्कूल में अभी कुछ ही माह पहले हुई थी। एक रात वे दोनों छात्र एक फ़िल्म देखकर लौटे जिसमें एक दृश्य में उन्होंने एक अभिनेता को किसी कमरे के अन्दर से बन्द चिटख़नी उठाकर कमरे में जाने का तरीका देखा। रात्रि को हॉस्टल में लौटने पर उन्होंने भी अपने कमरे के साथ वाले कमरे की चिटख़नी, जो कि उस अध्यापिका ने अन्दर से बन्द की हुई थी, को उसी तरह उठाकर दरवाज़ा खोला और वे चुपके से उस अध्यापिका के पास गये और कुचेष्टा करने की कोशिश की। जब उस अध्यापिका ने चिल्लाने की कोशिश की तो उसका गला दबाकर उससे निकृष्ट कर्म करके उसका दम घोंटकर उन्होंने उसे मार डाला। तब दोनों को एहसास हुआ कि उनसे तो एक बहुत बड़ा अपराध हो गया है जिसका बहुत कड़ा दण्ड है। अतः वे हॉस्टल छोड़कर भाग गये। दूसरे दिन जब पुलिस मौके पर पहुँची तो उन दोनों के कमरे की ओर से दरवाज़ा खुला देखकर और उन्हें ग़ायब पाकर वह समझ गई कि यह हथ-कंडा इन दो किशोरों ने ही किया है। पुलिस ने उनके गाँव में जाकर उन्हें पकड़ लिया। उन दोनों ने मान लिया कि यह अपराध उनसे ही हुआ था। ऐसा निकृष्ट कर्म करने का कारण पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि वे उसी रात को एक फ़िल्म देख कर लौटे थे जिस में एक ऐसा दृश्य दिखाया गया था और उनका कुकृत्य इसी फ़िल्म का ही परिणाम था।

इसी प्रकार ऐसा एक और किस्सा कई वर्ष पूर्व समाचार पत्रों में छपा था। किसी गाँव के रहने वाले एक नवयुवक और नवयुवती 'मिलन' नामक एक फ़िल्म देखने गये। उस फ़िल्म में यह दिखाया गया था कि उस नायिका के माता-पिता, नायक और नायिका के विवाह के विरुद्ध थे क्योंकि नायिका राज-कुमारी थी और नायक एक साधारण नाविक था और कुमारी को एक अच्छा वर मिल सकता था। आगे दिखाया गया था कि एक दिन जब वह राज-कुमारी उस नाविक की नाव में बैठकर जा रही थी तो नाव उलट गई और वे दोनों नदी में ही कूद पड़े और उन्होंने ऊँचे स्वर में कहा कि हमारा मिलन जल में हो गया। इस फ़िल्म का असर उस नवयुवक और नवयुवती पर (जिनके प्रणय में समाज बाधा बना हुआ था) यह हुआ कि सिनेमा हाल से बाहर निकल कर दोनों ने एक-दूसरे के हाथ में हाथ देकर और उसमें मिलन फ़िल्म की टिकट रूमाल से बाँध कर यह सोचकर कुएँ में छलाँग लगा दी कि हमारा मिलन भी जल में ही होगा।

तो देखिये, कथित प्रेमालापों या दृश्यों का प्रभाव युवकों तथा युवतियों पर क्या पड़ता है ! फ़िल्म में जो नदी में डूबना दिखाया गया था, वह तो काल्पनिक कहानी का एक झूठा ही दृश्य था परन्तु उनके प्रभाव में आने वाले युवक-युवतियाँ तो सचमुच ही अपना जीवन खो बैठते हैं।

एक ज़माना था जब इस प्रकार की एक-आध वार्ता भी सारे नगर की चर्चा का कारण बन जाती थी परन्तु अब तो लोग प्रतिदिन ऐसे किस्से सिनेमा में देखने जाते हैं। पहले कभी कोई नारी आत्म हत्या करती भी थी तो अपने गौरव और अपने सतीत्व की रक्षा के लिए करती थी। परन्तु, देखिये तो आज वह पाश्चात्य देशों का अन्धानुकरण करके वासना की पूर्ति न हो सकने के कारण जीवन से भी हाथ धो डालती है ! पहले यदि किसी का अन्य किसी इच्छित व्यक्ति से विवाह नहीं भी होता था तो वह सारी आयु कुंवारा अर्थात् ब्रह्मचारी होकर रहने का व्रत

ले लेता था, परन्तु आज इन फ़िल्मों का प्रभाव देखिये कि वे विवाह से पहले ही अवैध सम्बन्ध स्थापित करते हैं, माता-पिता से छिप-छिप कर घृणित कर्म करते हैं और विवाह न होने पर आत्म-हत्या जैसे कुत्सित कर्म कर डालते हैं। फ़िल्मों में न तो कोई डूबता है, न गाड़ी के नीचे सिर देता है, न विष ही खाता है परन्तु सामान्य जन उससे प्रभावित होकर कुल का नाम बदनाम कर देते हैं। जिस आयु में उन्हें अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर अध्ययन में पूरा ध्यान देना चाहिए, उस आयु में वे ऐसे उल्टे कर्म सीख जाते हैं और फिर वे कालेजों में ही कन्याओं के सामने ऐसे गीत गाते तथा रेगिंग (Ragging) के नाम से काले कर्म करते हैं। फिर एक बार जब उनके चरित्र का पतन हो जाता है तथा वे लज्जा को उतार देते हैं तब तो वे अध्यापकों के विरुद्ध भी आन्दोलन करने आदि में संकोच नहीं करते।

२. फ़िल्म से हिंसात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन

फ़िल्म की कहानी लिखने वाले अथवा फ़िल्म बनाने वाले अपनी फ़िल्म को अधिक बिकाऊ (Box office hit) बनाने के लिए फ़िल्म के लिए दूसरा आवश्यक तत्त्व मानते हैं—हिंसात्मक दृश्य। वे ऐसे दृश्य अवश्य दिखाना चाहते हैं जिनमें दर्शकों को 'सस्पेंस' (Suspense) हो, ख़तरे का आभास हो और वे साँस रोककर सोचते रहें कि आगे क्या होगा! स्मगलरों की पुलिस वालों के साथ या पुलिस वालों की डाकुओं के साथ या नायक (Hero) की प्रति-नायक (Villain) के साथ जंग का छिड़ जाना तो फ़िल्मी दुनिया में एक रिवाज-सा है। कारें एक-दूसरे के पीछे बड़ी तेज़-रफ़्तारी से भाग रही हैं और फिर उनके आगे ऐसा स्थान आ जाता है कि कार उलटने का डर है या आगे जाने का रास्ता ही नहीं है। अब अमुक व्यक्ति आगे जायेगा कैसे? वह तो अब पकड़ा ही जाएगा और फिर बचेगा कैसे? इसमें पिस्तौलों का चलना, मुक्केबाज़ी दिखाना, खूब दाव-पेच दिखाना— इसमें ही युवा वर्ग दिलचस्पी लेने लगता है और इससे अपने प्रतिद्वन्दियों से बदला लेने के तौर-तरीके और दाव-पेच सीखने का यत्न करता है। इसी के परिणामस्वरूप आज हम समाज में इस क़िस्म की वारदातें होते देखते हैं जिनमें फ़िल्म-दर्शक फ़िल्म में देखे हुए दृश्यों का व्यावहारिक जीवन में अनुकरण करता है। बैंक वैन (Bank Van) में जाते हुए ख़ज़ाने को बन्दूक के बल से लूटना, किसी की कार का तेज़ रफ़्तारी से पीछा करके उससे पैसा ऐंठना, कहीं थोड़ी-सी बात हो जाने पर चुनौती देना और ज्युडो (Judo) तथा दूसरे दाव-पेचों का प्रयोग करना—प्रतिदिन ऐसे किस्से होते रहते हैं।

३. खर्चीले और थोथे फ़ैशन

आज स्त्रियों के भाँति-भाँति से बाल बनाने, युवकों और युवतियों की नयी-नयी प्रकार की पोशाकें पहनने, मकानों को नये-नये ढंग से सजाने के नये-नये फ़ैशन सिनेमा में देखने को मिलते हैं। अभी एक फ़ैशन के अनुसार नव-वधुओं के कपड़े बनाये ही होते हैं और नव-युवकों ने कपड़े सिलाए ही होते हैं कि कल उसका स्थान दूसरा फ़ैशन ले लेता है और नई फ़िल्मों में नया फ़ैशन देखकर आए हुए नवयुवक और नवयुवतियाँ पहले वालों पर फ़ब्तियाँ कसते हैं अथवा उसे 'ओल्ड फैशन्ड' (Old Fashioned)—पुराना पंथी—बताते हैं। इस प्रकार नई हवा चलने से युवकों और युवतियों की ओर से पैसों के लिए नित्य नये तक़ाज़े होते हैं। यों सौन्दर्य और सफ़ाई बुरी चीज़ नहीं हैं बल्कि वह समाज ही अच्छा नहीं जिसके लोगों में कला-कौशल तथा स्वच्छता और सौन्दर्य की समझ (aesthetic sense) न हो परन्तु सिनेमा से निकलने वाले नित्य-नये फ़ैशनों के पीछे स्वच्छता का भाव नहीं होता बल्कि प्रायः शरीर का अधिकाधिक उघाड़ना, नग्नता का प्रदर्शन करके लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना, अपनी चमड़ी के रंग-रूप पर इतराते हुए स्वयं को लोगों की नज़रों में लाने का प्रयत्न करना होता है।

याद रहे कि उपरोक्त प्रवृत्तियाँ ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो मनुष्य को नश्वर शरीर को सजाने-संवारने इत्यादि के धन्धों में लगाये रखती हैं। ये भारत की दार्शनिकता, यहाँ की संस्कृति, यहाँ के अध्यात्मवाद, यहाँ के नैतिक मूल्यों और मनुष्य के स्थाई हितों के विरुद्ध हैं। भारत देश एक तपोभूमि है, योग भूमि है, तीर्थ स्थल है, यात्रा स्थान है, प्रभु की अवतरण भूमि है और एक आध्यात्मिक देश है। संसार की संस्कृति को, विश्व की सभ्यताओं को, युग-युग के इतिहास को भारत ने नैतिकता और महानता रूपी देन दी है। इसके कारण ही किसी समय भारत सभी देशों का मुकुट-मणि था और भारत की इसी अनमोल देन को दूसरे

देशों ने अंगीकार किया था। परन्तु आज यह चलचित्र जन-मानस को इस संस्कृति से हटाकर इसे निरा देह-अभिमानी बना रहे हैं। आज वे नारी को 'मातृ-शक्ति' अथवा कल्याणी का दर्जा देने की बजाय उसे वासना की गुड़िया मान कर चल रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि स्वयं नारियाँ भी इस पतनकारी चीज़ के प्रति सचेत नहीं हैं। पहले कहा जाता था कि जिस देश में नारी को 'पूज्या' माना जाता है, उस देश में देवताओं का वास होता है और आज यह माना जाता है कि जिस देश में नारी के साथ वासनात्मक सम्बन्धों की जितनी छूट अथवा स्वच्छन्दता है, वही देश प्रगति-प्राप्त (Advanced) और सभ्य है। देखिये तो कितना पतन हो गया है! अफ़सोस है कि लोग यह नहीं समझते कि यह सब तो चाकू, छुरी और बन्दूक से भी अधिक ख़तरनाक है क्योंकि इसके विरुद्ध तो मनुष्य अपने बचाव की भी कोशिश नहीं कर रहा। वास्तव में बन्दूक और पिस्तौल से इतने नर-नारियों की हत्या नहीं होती जितनी गंदी फिल्मों से जन-जन की नैतिक मृत्यु होती है। सिनेमा से तो हर नर-नारी के मन में काम और हिंसा ही पनप रही है। खानदान ही तबाह हो रहे हैं। प्राचीन संस्कृति ही लुट रही है। एक अध्यातम प्रधान उच्च सभ्यता का ही मलियामेट हो रहा है। देश का नक्शा ही छ रहा है। भारत में रहने वाले व्यक्तियों से आध्यात्मिकता ही नष्ट हो रही है। धर्म, ईश्वर और नाम की चीज़ ही मिट रही है।

कुटिलता की कला का प्रदर्शन

सिनेमा में दिखाई जाने वाली फ़िल्मों में चालाकी, हेरा-फेरी या कूटनीति या चोरी-डकैती को भी प्रायः काफ़ी स्थान दिया जाता है। दूसरे को उल्लू बनाना, होशियारी से दूसरे को ठग लेना, चालाकी से अपना काम निकालना इत्यादि इनमें कई दृश्यों में दिखाया गया होता है। इससे मनुष्य की सरलता, ईमानदारी, उसकी स्पष्टवादिता इत्यादि पर बुरा प्रभाव पड़ता है और धीरे-धीरे वह कुटिल और काम निकालने में उचित-अनुचित सब तरीकों को अपनाने वाला बन जाता है। इसी प्रकार, फ़िल्मों से वह चोरी तथा अन्य बुराइयों के भी नये-नये साधन सीखता है। आये दिन इसके कई समाचार छपते हैं।

एक बार नई देहली में संग्रहालय से कुछ अनमोल ऐतिहासिक सिक्कों आदि की चोरी हुई थी और आख़िर चोर पकड़ा गया था। पुलिस ने देखा कि संग्रहालय के सभी दरवाज़े अन्दर से ज्यों के त्यों बन्द थे। अतः उसे अचम्भा था कि चोर भीतर घुसा कैसे और बाहर निकला कैसे। तब चोर ने बताया कि वह संग्रहालय के रोशनदान में से अन्दर आया था और कि यह तरीका उसने अमुक फ़िल्म से सीखा था।

दूर क्यों जायें, अभी २६ मई, १९८० को ही देहली के समाचार पत्रों में ऐसा एक समाचार छपा था। उसमें बताया गया था कि देहली के मदनगीर इलाके के २६ वर्षीय युवक, जिसका नाम लक्ष्मण है, ने एक फ़िल्म देखी। उस फ़िल्म से उसके मन में यह विचार पैदा हुआ कि शीघ्र ही धनी बनने का उपाय किया जाय। लक्ष्मण जिल्दसाज़ (Book-binder) का धन्धा करता था परन्तु फ़िल्म से उसके मन में यह भाव जागा कि पैसे के लिए फलाँ साधन अपनाया जाय।

अतः उसने नई देहली के ग्रेटर कैलाश—II में रहने वाले, वी० के० मेहता नामक व्यक्ति को लिखा कि वह उसे २३ मई को तुग़लकाबाद क़िले के निकट १०,००० रुपये दे दे वरना उसका परिणाम बहुत ख़तरनाक होगा।

महता जी उस दिन अपने नौकर तथा सामान्य वेश में कुछ पुलिस वालों के साथ उस स्थान पर पहुँचे परन्तु वहाँ उनसे वह रकम लेने कोई भी नहीं आया।

परन्तु जब महता जी अपने घर लौटे तो उन्हें एक दूसरा लिखा हुआ रुक्का मिला। इसमें उन्हें, डाँटा गया था कि वे, वहाँ 'बारात' लेकर क्यों गये थे। लक्ष्मण ने पुलिस वालों के लिये 'बारात' शब्द का प्रयोग किया था और उसने यह भी लिखा कि महता जी अगले दिन अम्बेदकर रोड पर अमुक होटल के निकट उन्हें वह रकम दे दे।

कालका जी थाने की पुलिस ने मेहता जी को राय दी कि इस बार वे अकेले ही धन के साथ अपना रिवालवर भी लेकर जायें। पुलिस ने अपनी योजना पहले ही से बना रखी थी। जब लक्ष्मण वहाँ धन लेने के लिये आया तो उसे तुरन्त ही पकड़ लिया गया।

पूछे जाने पर लक्ष्मण ने बताया कि हिन्दी में एक फ़िल्म देखने का उस पर यह प्रभाव पड़ा था जिसके कारण उसने यह हथकण्डा रचा!"

अब देख लीजिये, सिनेमा का मनुष्य के चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ता है ! बुराई की ओर मनुष्य जल्दी झुक जाता है; उसमें पैसे का प्रलोभन, थोड़ा-बहुत क्रोध, थोड़ी-बहुत कामुकता एवं चालाकी तो पहले ही से होती है; फ़िल्म देखने से उसमें यह संस्कार और अधिक दृढ़ हो जाते हैं तथा उसे बुरे कर्म के लिये 'प्रेरित' करते हैं। इसलिये सभी धार्मिक नेता वास्तव में इसे बुरा मानते हैं। पिछले दिनों रोमन केथोलिक मत के प्रधान—पोप (Pope)—का भी एक वक्तव्य समाचार पत्रों में छपा था जिसमें उन्होंने टी० वी० तक को देखने की मना की थी। अप्रैल मास में देहली के समाचार पत्रों में एवार्ड (Award) प्राप्त करने वाले कुछेक फ़िल्मी अभिनेत्रियों ने भी कहा था कि फ़िल्म में कामोत्तेजक और हिंसा के लिये उकसाने वाले तत्त्व नहीं होने चाहियें।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि आज सिनेमा द्वारा नैतिकता की बजाय अनैतिकता का प्रचार हो रहा है। धार्मिक संस्थाएँ तो इसके विरुद्ध हैं ही। हाँ फ़िल्मों में कुछेक धार्मिक कथायें भी कई बार दिखाई गई होती हैं परन्तु उनसे भी जहाँ लोगों में थोड़ा-प्रभु-प्रेम पनपता है वहाँ कुछेक धार्मिक कुरीतियों या अन्ध-विश्वासों का भी प्रचार होता है।

५. फ़िल्मों द्वारा धार्मिक बातों के बारे में भी भ्रान्तियों का प्रचार

फ़िल्मों में जो धार्मिक, दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक विषयों पर किसी-न-किसी प्रकार से मान्यता, विश्वास या सिद्धान्त प्रगट किया गया होता है, उसका परिणाम भी प्रायः श्रेयस्कर नहीं होता। फ़िल्म की कहानी लिखने वाले, अथवा उसके निर्देशक इन मामलों में प्रायः सुविज्ञ और अनुभवी तो होते नहीं। अतः हो सकता है कि किसी धार्मिक सिद्धान्त को अपनी फ़िल्म में दिखाने के पीछे उनके मन में इरादा अच्छा ही हो, परन्तु प्रदर्शित सिद्धान्त मूलतः ग़लत होने के कारण अपनी छाप सामान्य दर्शकों पर ऐसी डाल जाता है कि बाद में उसे जीवन-भर सामान्य दर्शकों के मन से मिटाना मुश्किल हो जाता है। फ़िल्म में जो दृश्य दर्शकों के सामने आते हैं, वे प्रायः उनके मन में प्रेम, घृणा, भय आदि आवेग (emotions) उत्पन्न करते हैं और उस स्थिति में मनुष्य अपने तर्क एवं विवेक का अधिक प्रयोग नहीं करता जिससे वे दृश्य उसे सहज ही स्वीकार्य होते हैं और उसके मन में स्थाई वास कर लेते हैं। अतः फ़िल्म में देवी-देवताओं, परमात्मा या अन्य विषयों पर जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दृश्य होते हैं, वे भी भ्रान्तियाँ फैलाते हैं।

ऐसे सिनेमा बन्द करो !

यदि किसी घर को हम झाड़कर तथा झाड़ू-ब्रुश से साफ़ करें और फिर उसके बाद ही वहाँ आँधी आ जाय तो क्या परिणाम होगा ? स्पष्ट है कि वहाँ सफ़ाई समाप्त हो जायगी। ठीक इसी प्रकार, यदि हम एक ओर तो पाठ-शालाओं तथा कालेजों में चरित्र-निर्माण की बात करें और अनुशासन के लिये यत्न करें और, दूसरी ओर, वे सिनेमाघरों में जाकर अश्लील फ़िल्में देखते रहें तो उसका भी क्या परिणाम निकलेगा ? अतः यदि सरकार, माता, पिता, धार्मिक नेता, राजनीतिक नेता और आम लोग चाहते हैं कि देश की नई पीढ़ी चरित्रवान हो तो सबसे पहले अश्लील, हिंसा-प्रधान तथा बुराई से भरे सिनेमा पर प्रतिबन्ध लगना चाहिये।

यह 'भ्रष्टाचार भस्मकारी यज्ञ' है—इसमें हरेक ने अपने किसी दुर्गुण को आहुति डालनी है

यह अपनी प्रकार का एक अनोखा यज्ञ है जो ५००० वर्ष में एक बार होता है। ज्ञान ही इस यज्ञ में घृत का काम करता है। 'योग' इस यज्ञ की अग्नि है। प्रजापिता ब्रह्मा इसके यज्ञपिता हैं। परमपिता परमात्मा शिव ने स्वयं विश्व-शान्ति के लिए यह यज्ञ रचा है। तपस्विनी कन्याएं-बहनें ही इस यज्ञ को समस्त व्यवस्था में लगी हैं। आप जिस परमात्मा का आह्वान करते थे, अब वह स्वयं आपका आह्वान कर कर रहा है! इस यज्ञ में हरेक को अपनी किसी-न-किसी बुराई की आहुति डालनी है। यह अग्नि बुराईयों ही को भस्म करने वाली है। जो इसमें अपनी बुराई को भस्म नहीं करेगा, उसकी बुराई उसके पास ही रह जाएगी। याद रहे: अब पाप का घड़ा भरने वाला है। यह धरा अब विकारों और विकर्मों के बोझ से दबी जा रही है। क्या स्वयं को, आने वाली सन्तानों को, देश को, अपनी संस्कृति को पापाचार के भीषण विष से बचाना हमारा कर्त्तव्य नहीं है? स्मरण रहे कि धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य, श्रेष्ठाचार और भ्रष्टाचार तथा देवत्व और आसुरीयता का यह संग्राम अपने आख़िरी दौर में है। देवत्व आप से सहयोग मांगता है। पवित्रता आप से प्रार्थना करती है। श्रेष्ठाचार आप से अनुरोध करता है कि मेरा विरोध न करो। समय आप से याचना करता है कि मेरी अवहेलना न करो! फिर भी यदि आप न मानो तो आपकी अपनी मर्ज़ी है।

सभी से अपील

इस ईश्वरीय यज्ञ में सहयोग देना सभी का धर्म है। बच्चों और युवकों से अनुरोध है कि बड़ों के प्रति अनादरभाव, विद्यालयों में अनुशासनहीनता, अध्यापकों के प्रति अपमान भाव तथा अश्लीलता या कामुकता के प्रति आकर्षण की आहूति इस में दें। माता-पिता और अध्यापकों से प्रार्थना है कि वे बच्चों के चरित्र के प्रति अवहेलना, उनके सामने क्रोध-लीला और अश्लील फ़िल्मों आदि की चर्चा, उन से झाड़-झपट और डांट-डपट की प्रचुर सामग्री इस में डालें। व्यापारियों से आवेदन है कि चीजों में मिलावट, चोरबाज़ारी और कर-चोरी, ग्राहकों के प्रति अनात्मीयता तथा शोषण-भावना को 'इदं अग्नये इदं न मम्' कर दें। दफ़्तरों आदि के कर्मचारियों से हमारा कथन है कि वे कार्य से जी चुराने की आदत, जनता के प्रति असहानुभूति तथा असहयोग की भावना को अग्नि-समर्पण कर दें। राजनीतिक नेताओं से विनति है कि वे पर-निंदा और आत्म-प्रशंसा, दल-बन्दी और फूट तथा अस्थिरता और कुर्सी के मोह को इस यज्ञ-कुण्ड में डाल दें। धार्मिक नेताओं से तो कर-बद्ध अनुनय-विनय है कि धार्मिक संकीर्णता और मन वचन तथा कर्म के अन्तर को इस पवित्रकारी अग्नि में सदा के लिये डाल दें। इस प्रकार ग़रीब-अमीर, नास्तिक-आस्तिक, जिसके पास जो (बुराई) है, वह दिल खोल कर, दोनों हाथों में भर-भर के इस भ्रष्टार भस्मकारी यज्ञ में डाल दें। इस यज्ञ के लिये हम आप से धन नहीं मांगते, घी या सामग्री इकठ्ठी करने के लिये नहीं कहते, घंटों मन्त्र पढ़ने के लिये नहीं कहते; हम आपसे आपके तथा राष्ट्र-हित के लिये केवल बुराई की एक बोरी, एक कट्टा या एक मुट्ठी मांगते हैं? क्या वह भी आप इस यज्ञ के लिये नहीं देंगे?

ब्रह्माकुमारियां तथा ब्रह्माकुमार

धूम्रपान या विषपान ?

आज हम रेलगाड़ी में, बस में, या हवाई जहाज में, जहाँ भी बैठे हों, वहाँ हमारे निकट बैठे हुए लोग सिगरेट या बीड़ी निकाल कर, उसे सुलगा कर कश लगाना शुरू कर देते हैं ! एक समय था जब रेल के डिब्बों में लिखा रहता था कि 'सिगरेट पीना मना है' अथवा 'धूम्रपान वर्जित है।' कुछ वर्षों के बाद इसको हटा कर यह लिख दिया गया कि "यदि दूसरे यात्री मना करें तो धूम्रपान न करें।" परन्तु आज हालत यह है कि ऐसे निर्देशों की कौन परवाह करता है ? स्थिति ऐसी होती जा रही है कि सिगरेट आदि पीने वालों की संख्या न पीने वालों से अधिक न सही तो समतल तो होती ही जा रही है। अतः यदि नम्रता-पूर्वक भी कोई मनुष्य अपने पास में बैठे हुए व्यक्ति से सिगरेट न पीने के लिये निवेदन करता है तो पास में बैठे हुए दूसरे यात्री, जिनमें से कुछ ऐसे लोग भी शामिल होते हैं जो सिगरेट-बीड़ी पीने की आदत वाले ही हैं परन्तु उन्होने अभी उसे जेब से निकाल कर मुँह को नहीं लगाया होता, कह उठते हैं—"साहब, अभी तो यात्रा शुरू ही हुई है; लम्बी यात्रा है, यह बेचारा कब तक सिगरेट नहीं पीयेगा ? आप को कोई एतराज हो तो आप ही थोड़े समय के लिए किसी दूसरी सीट पर चले जाइये···।" यदि आप उनका ध्यान गाड़ी में लिखे हुए निर्देश की ओर दिलायें तब तो बात ही बिगड़ जाती है और लोग कह उठते हैं कि—'ठीक है, कण्डकटर को जाकर कह दीजिये, हम सिगरेट तो छोड़ नहीं सकते···।" कण्डक्टर स्वयं ही प्रायः सिगरेट पीने वाला व्यक्ति होता है, तब किया ही क्या जा सकता है ? सच कहा गया है कि जब एक बुरी आदत पैदा हो जाती है तो उससे और भी बुरी आदत बन जाती है और फिर सब को मिला कर एक ऐसी फ़ौलादी जंजीर बन जाती है जिस में जकड़ा हुआ मनुष्य स्वयं को नहीं छुड़ा सकता। थोड़े ही शिष्ट लोग ऐसे होते हैं जो हमें नाक पर रूमाल रखते देख कर कहते हैं—"ओहो, आप को यह धुँआँ अच्छा नहीं लगा रहा ! हम थोड़ी देर के लिए दूसरी जगह चले जाते हैं···।"

सिगरेट में चौबीस विष

बात केवल इतनी ही नहीं कि सिगरेट का धुआँ हमें अच्छा लगता है या बुरा। बात तो यह है कि तम्बाकू में २४ घातक विष हैं। ११ फ़रवरी, १९६५ को भारत सरकार द्वारा प्रकाशित एक पत्रिका में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया था। संक्षेप में हम २४ में से १० प्रकार के विष के नाम तथा उनसे होने वाले रोगों के नाम नीचे दे रहे हैं—

१. **निकोटीन विष** (Nicotine)—इससे तथा तम्बाकू द्वारा होने वाली उत्तेजना से होंठों, जिह्वा, भोजन-प्रणाली तथा कण्ठनली (Larynax) इत्यादि में कैंसर (cancer) रोग होने की संभावना होती है। देखा गया है कि जिन पुरुषों को इन-इन स्थानों पर कैंसर का रोग हुआ, उनमें ७५% से लेकर ९०% तक रोगी धूम्रपान करने वाले थे। पुनश्च, इस विष का रक्त पर भी बुरा ही प्रभाव पड़ता है।

२. **कार्बन मोनोऑक्साइड तथा सायनाईड विष** (Carbon Monoxide and Cyanide) इन दोनों से श्वास सम्बन्धी रोगों तथा दमा आदि से मनुष्य पीड़ित होता है। इनका प्रभाव नसों पर, विशेष तौर पर आँखों से सम्बन्धित नसों एवं तंत्रिकाओं (Optic nerves) पर बुरा पड़ता है और इसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे मनुष्य की आँखों की रोशनी कम होने लगती है, यहाँ तक कि उसके अन्धे होने की सम्भावना भी होती है।

३. **मार्श गैस विष** (Marsh Gas) इसका व्यक्ति के पुरुषत्व पर बुरा प्रभाव पड़ता है और यदि माता भी धूम्रपान करती हो तो कमज़ोर बच्चा पैदा होता है।

४. **अमोनिया विष** (Ammonia) इससे पाचन शक्ति बिगड़ने लगती है और इसका जिगर पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

५. **कोलीडीन विष**—इससे मनुष्य का सिर थोड़ा चकराने लगता है और नसें कमज़ोर पड़ जाती हैं।

६. **पायरीडियन विष**—इससे आँतों में ख़ुश्की हो जाती है और पेट में कब्ज़ रहने लगता है।

७. कार्बोलिक एसिड विष (Carbolic acid)—इससे अनिद्रा, स्मरण शक्ति का कम होना और चिड़चिड़ेपन का स्वभाव हो जाता है।

८. पेरफ़ेरोल विष - इससे दान्त पीले, मैले और कमज़ोर हो जाते हैं।

९. एज़ालिन विष और सायनोजन विष—इससे खून ख़राब होता है।

१०. फुरफुरल विष और प्रूसिक एसिड विष—इससे थकान, जड़ता व उदासी पदा होती है।

इसी तरह अन्य प्रकार के विष से खाँसी, टी० बी०, अन्दरूनी सूजन, लकवा तथा खून का पानी बन जाना आदि रोग होते हैं। अत: हम पड़ोस में बैठे हुए व्यक्ति से, जो कि सिगरेट या बीड़ी पीता है, उस के भले के लिए, अपने भले के लिए, अन्य यात्रियों के हित के लिए तथा विश्व की भलाई के लिए कहते हैं क्योंकि जिन्होंने वैज्ञानिक खोज की है वे बताते हैं कि तम्बाकू के धुएँ से केवल सिगरेट पीने वाले को ही हानि नहीं होती बल्कि जिस पड़ोसी के श्वास में उसका धुआँ जाता है, उसे भी केन्सर आदि तक रोग होने की सम्भावना होती है। विज्ञ लोगों का कहना है कि इससे पर्यावरण प्रदूषण (Environmental Pollution) बढ़ रहा है क्योंकि सारा वातावरण (Atomosphere) तो एक ही है। अत: हम वातावरण में जो विष यहां फैंकते हैं, उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव कुल सारे वातावरण पर पड़ता है और उससे हम सभी लोगों को प्रत्यक्ष या अ त्यक्ष रीति से थोड़ा-बहुत दु:ख पहुँचाते हैं। स्पष्ट है कि ऐसा कर्म न केवल अपने तन के लिए हानिकारक है बल्कि विश्व-भर के अनेकानेक मानवों के लिए भी कष्टकारक है। देखा जाए तो यह एक प्रकार का अपराध है अथवा पाप है परन्तु खेद है कि आज इस बुराई के प्रति सरकारों अथवा धार्मिक संस्थाओं का ऐसा दृष्टि-कोण नहीं बना। एक रिपोर्ट में कहा गया था कि **एक सिगरेट पीने से मनुष्य की १८ मिनट की आयु कम होती है। इतनी न भी होती हो तो यह तो सामान्य विवेक से भी स्पष्ट है कि धुआँ कोई पीने की चीज नहीं है! मनुष्य की श्वास-नली किसी कारखाने की चिम्नी या घर की रसोई के धुएँकश के समान नहीं है। और मनुष्य का शरीर तम्बाकू का धुआँ लेने के लिए नहीं बना हुआ!** धूम्रपान न केवल अपने तन का धीमी गति से हत्या करता है बल्कि दूसरों के भी दम घोंटने तथा उन्हें रोगी बनाने का प्रयत्न है। यह दूसरों के अधिकार का अतिक्रमण है, दूसरों के शुद्ध वायु लेने के अधिकार को छीनने का कर्म है।

भारत के डाक्टरों के अधिवेषण में प्रस्ताव

सिगरेट से होने वाली हानियों, अर्थात् शरीर में पैदा होने वाले रोगों के बारे में हुए शोध कार्य को मान्यता देते हुए ही सन् १९६९ तथा १९७० में हुए क्रमश: कार्य ४५वें तथा ४६ वें अधिवेशन में, आल इण्डिया मैडिकल कांफ्रेंस ने सर्वसम्मिति से प्रस्ताव पास किया था जिसमें धूम्रपान को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक और ख़तरनाक रोगों को पैदा करने वाला बताया गया था। उसी प्रस्ताव में भारत सरकार से सिफ़ारिश की गई थी कि वह कानून बनाकर अमरीका, इटली, स्वीडन आदि की तरह सिगरेट के हर पैकेट पर यह लिखा जाना अनिवार्य कर दे कि "सिगरेट आपके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।"

केवल भारत ही की मैडिकल कांफ्रेस में नहीं बल्कि १८ मई, १९७० को विश्व स्थास्थ्य संघ (W.H.O) ने भी सिगरेट और तम्बाकू के विरुद्ध सर्वसम्मिति से एक प्रस्ताव पास किया जिसका एक छोटा-सा अंश हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :—

"२४वीं वर्ड हैल्थ एसम्बली को अपने डायरेक्टर जनरल की रिपोर्ट देख कर इस बात का निश्चय हो गया है कि धूम्रपान के विनाशकारी प्रभावों से फेफड़ और दिल की बिमारियाँ हो जाती हैं जिनमें कैंसर, दमा, ब्राँकाईटिस, दिल के रोग तथा अन्य रोग भी शामिल हैं।"

इसी प्रस्ताव में आगे चल कर अपने सदस्यों को सिगरेट न पीने की हिदायत की गयी है और डायरेक्टर जनरल से सिग्रेट-विरोधी प्रचार के लिए अनेक उपाय करने का अनुरोध किया गया हैं। उसीके अनुसार डायरेक्टर जनरल ने जो आदेश जारी किये उन में से एक यह भी है कि—

"कम से कम रेलों, बसों व सार्वजनिक स्थानों में धूम्रपान बन्द करना चाहिए।"

परन्तु हम देखते हैं कि आज इन आदेशों, निर्देशों या उपदेशों को कोई विरला ही आचरण में ला रहा है। कई डाक्टर, जो इसके बुरे परिणामों से परिचित हैं, भी सिगरेट पीते हैं। अभी इस वर्ष विश्व

स्वास्थ्य संघ (W.H.O) ने सिगरेट के विरुद्ध प्रचार करने के लिए विशेष तौर पर कार्य करने के लिए निश्चित किया है। परन्तु उस सब के बावजूद भी कुछ थोड़े ही लोग धूम्रपान छोड़ते हैं। इसका कारण क्या है ?

आदत बुरी बला है

बात यह है कि जब मनुष्य को कोई बुरी आदत पड़ जाती है तो उसके लिए फिर उस आदत को छोड़ना दुष्कर हो जाता है। सिगरेट पीने वाले की भी यही समस्या है। सिगरेट पीने वाले कई व्यक्ति मानते हैं कि सिगरेट पीना अच्छा नहीं है परन्तु उन्हें भीतर से ऐसी उक्साहट (Urge) होती है कि वे फिर पीना शुरू कर देते हैं। उनका मनोबल (Will power) पहले ही कम हो चका होता है। कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण कम हो चुका होता है। अत: जब तक कोई ऐसा साधन उन्हें न दिया जाए जिससे कि उनका मनोबल एवं आत्मविश्वास बढ़े और उनमें नियन्त्रण-शक्ति आए तब तक वे स्थायी तौर पर और सदा के लिए धूम्रपान छोड़ने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। पुनश्च, हमें यह भी देखना चाहिए कि मनुष्य सिगरेट पीना शरू किन हालात में और क्यों करता है ? आप यदि धूम्रपान करने वाले अनेकानेक लोगों से पूछेंगे तो इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि या तो अशान्ति के कारण वे कश लगाकर अपने दु:ख को भुलाने की कोशिश करते हैं और या वे अपने दोस्तों के कहने से शौकिया या संग के रंग में शुरू करते हैं ! अब यदि उन्हें कोई ऐसी विधि न सुझाई जाए जिससे कि उनका मन शान्त हो और आगे के लिए भी उनकी शान्ति बनी रहे तथा वे समस्याओं का सामना कर सकें तथा उनमें नियमों और सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने की ऐसी शक्ति आए कि जिससे दूसरों की वर्गलाहट में न आ जाएँ तो वे सिगरेट को सदा के लिए नहीं छोड़ सकते।

सहज राज योग (Meditation) ही उपाय

इन सभी कारणों से ही ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग की आवश्यकता है। यदि मनुष्य राजयोग का अभ्यास करे तो उसे आत्मिक शान्ति मिलती है और वह देह-भाव से न्यारा अनुभव करता है। उसके फलस्वरूप उसे शारीरिक विक्षेप और इन्द्रिय आकर्षण प्रभावित नहीं करते। उससे वह इस बुरी आदत से छूट जाता है। प्रजापिता-ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय, जिसके ऐसे सुधार केन्द्र भारत के प्राय: सभी मुख्य नगरों में हैं, की भी इस नि:शुल्क सेवा से बहुत से लोग इस आदत से मुक्त हुए हैं !

कानून की पाबंदी

आज सरकार ने कानून पास करके सिगरेट की डिब्बियों पर यह छापना तो अनिवार्य निश्चित किया हुआ है कि सिगरेट स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। परन्तु सिगरेट के कारख़ानेदार उसे बहुत ही छोटे अक्षरों में छपवाते हैं ताकि लोगों का ध्यान उस ओर न जाए तो अच्छा है। वे समाचार पत्रों में अपने बड़े-बड़े विज्ञापन छपवाते हैं और उनमें यह शब्द बहुत ही छोटे अक्षरों में लिखते हैं; यह भी कानून का क्या मज़ाक है! जबकि सरकार समझती है कि सिग्रेट पीना निश्चय ही हानिकारक है तो फिर अपने ही कानून को तुड़वाना, कारखाने-दारों को समाचार पत्रों में बड़े-२ इश्तिहार देने की तथा सार्वजनिक स्थानों पर बड़े-२ बोर्ड लगाने की, सिनेमा घरों में स्लाइड दिखाने की छूट देना, हर दफ़्तर इत्यादि में हर मेज़ पर सिगरेट के लिए राखदान (Ashtray) रखना आदि क्या मज़ाक है ! चौराहों पर सिगरेट वालों की ओर से लगे बोर्डों पर इतने बड़े सिगरेट बने होते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क पर जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, वह अपनी छाप छोड़ जाता है परन्तु सरकार जो जनता की माता-पिता के समान है, जनता रूप अपनी सन्तति को इस बुरी आदत से छुड़वाने के लिए कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठाती।

उसका एक कारण यह भी है कि सिगरेट, शराब आदि से प्रादेशिक सरकारों, नगर पालिकाओं इत्यादि को बहुत आमदनी होती है। हाय, वे जनता के स्वास्थ्य की ओर पूरा ध्यान न देकर ऐसे विषैले व्यसनों से होने वाली आमदनी को महत्व देते हैं ! गोया वह लोगों को विष लेने की स्वीकृति देते हैं !

सिगरेट से आर्थिक हानियाँ

आज देश में करोड़ों रुपया सिगरेट बनाने, बेचने, पीने आदि पर खर्च होता है। यह कैसे दुर्भाग्य की बात है कि देश का करोड़ों रुपया ऐसी चीज पर खर्च होता है जो न तो भोजन का हिस्सा है, न उससे दूसरा ही कोई लाभ है ! यह तो गोया पैसा खर्च कर बीमारी

मोल लेने का साधन है। एक ओर करोड़ों लोग भूखे मरते हैं, दूसरी ओर अमीर तथा गरीब लोग करोड़ों रुपया सिगरेट में ही फूंक देते हैं। क्या यह देश के धन को व्यर्थ गँवाना तथा मनुष्यों के स्वभाव को बिगाड़ना नहीं है ? कितने ही ग़रीब अपनी आय का कुछ भाग प्रतिदिन इस पर खर्च कर डालते हैं जबकि उनके घर का जरूरी खर्च भी पूरा नहीं हो पाता।

कितनी बार हम समाचार पत्रों में पढ़ते हैं कि अमुक स्थान पर आग लग गई, और उसका कारण यह था कि सिगरेट को सुलगाता हुआ कुछ हिस्सा रह गया था। इसी तरह की और कितनी हानियाँ होती हैं ! परन्तु ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग (Meditation) के सिवा अशान्ति से तथा बुरी आदतों से छूटने का दूसरा और कोई तरीका हमारे विचार में नहीं है ! सहज राजयोग के अभ्यास से ही मनोबल मिलता और संस्कार-परिवर्तन होता है।

मेरे भारत देश का क्या होगा

ब्रह्माकुमार सूरजकुमार, मधुवन (आबू)

जहाँ प्रेम नहीं विद्रोह भरा
मानव मन में संताप भरा
जहाँ रक्त का खेल अनोखा है
मानव पग-पग पर रोता है
है बीच भँवर में नाव फँसी
बिनु नाविक नाव का क्या होगा ?
मेरे भारत देश का क्या होगा ?

बलिदान किये थे वीरों ने
यहाँ राम-राज्य को लाने को
संग्राम किये थे वीरों ने
झण्डा सुख का लहराने को
उन बलिदानी वीरों के उन
सब अरमानों का क्या होगा ?
मेरे भारत देश का क्या होगा ?

जीवन की आशा लोप हुई,
दुख के बादल मण्डराते हैं
माँ के बच्चे बिछुड़-बिछुड़ कर,
सिसक-सिसक मर जाते हैं,
इस पावन भारत भूमी की
इन सन्तानों का क्या होगा ?
मेरे भारत देश का क्या होगा ?

जहाँ अमृत वर्षा होती थी
डंडों की वर्षा होती है,
जहाँ प्राणी प्रेम में जीता था,
मन अन्दर-अन्दर रोता है
इस देव भूमी भारत माँ की
उस संस्कृति का क्या होगा ?...
मेरे भारत देश का क्या होगा ?...

जहाँ सुख की बन्सी बजती थी,
दुनिया की झोली भरती थी,
वो भारत भीख माँगता है,
अपनी सब शान गँवाता है,
भारत के ऊँचे मस्तक को
नत मस्तक करना क्यों होगा ?
मेरे भारत देश का क्या होगा ??

फिर से शिव आये भारत में
वो भूली राह दिखाते हैं
राजयोग से इस भारत के
भण्डारे सब भर जाते हैं
शिव की आज्ञा पालन करके
अब मानव पूरा सुख लेगा
अब मेरा भारत स्वर्ग होगा.....

मद्य-पान दुःखों का आह्वान

"प्रथम दृश्य"

स्टेज पर चिन्ताओं में बैठा बलबीर सिंह दिखाई दे रहा है, साथ में उसकी धर्म-पत्नी सुशीला बैठी है।

बलबीर—(सुशीला से)—देखो मीना बड़ी हो गई है। मुझे तो रात-दिन इसकी शादी की चिन्ता रहती है। उधर पहले ही लड़के की शादी का कर्ज़ ही नहीं उतरा अभी, कैसे होगा···मुझे तो काफ़ी रात तक नींद ही नहीं आती।

सुशीला—तुम यों ही चिन्ता करते हो, भगवान् ने बच्ची दी है, तो सब कुछ हो ही जाऐगा।

बलबीर—परन्तु आजकल दहेज का ज़माना है। बड़ा मुश्किल है इस मँहगाई में शादी करना। कोई ऐसा महापुरुष हो जो ये कुप्रथा बन्द करे। पेट का ही गुज़ारा नहीं होता, दहेज कहाँ से देंगे ?

(हाथ सिर पर रखकर बैठता है) चलो, थोड़ी सुरा ही पी लूँ···नींद नहीं आती तो करूँ भी क्या···

सुशीला—यह आदत तो ठीक नहीं।

बलबीर—परन्तु क्या करूँ ? बेचैनी में नींद ही नहीं आती। आज ऑफिस में भी झगड़ा हो गया है। मेरा मन बहुत अशान्त रहने लगा है।

इस प्रकार चिन्ता-ग्रस्त मनुष्य रोज़ शराब पीने लगा···परन्तु चिन्ताएँ बढ़ती गईं, आदत भी बढ़ती गई।

"दूसरा दृश्य"

माँ सुशीला और बच्ची मीना बैठी हैं। बच्ची कॉलेज में पढ़ रही है। बहुत समझदार है।

मीना—माँ, आज खाना नहीं बनाया ?

सुशीला—बेटी···(**सिर पर हाथ रखकर बैठ जाती है**)

मीना—बोलो माँ, मुझे तो बहुत भूख लग रही है।

सुशीला—बेटी, तेरे बाप को शराब की बुरी आदत पड़ गई है। सारी कमाई उसी में चली जाती है। हम ग़रीबी के शिकार होते जाते हैं···

मीना—माँ, आप पिता जी को समझाओ ना···

सुशीला—बेटी, मैंने बहुत समझाया है। तुम्हारी शादी और दहेज की चिन्ता में वो रात-दिन लगे रहते हैं। इससे बचने के लिए उन्होंने शराब पीना शुरू कर दिया और अब एक और चिन्ता ने हमें घेर लिया।

मीना—माँ, क्या मैं आपके लिए इतनी बड़ी समस्या बन गई हूँ ?

सुशीला—बेटी, बच्चे बड़े हो जाते हैं तो माँ-बाप को चिन्ता लग ही जाती है।

मीना—माँ, तब तो क्यों न मैं शादी ही न करूँ और आपकी चिन्ता भी छूट जाए ?

सुशीला—बेटी, ऐसा कैसे होगा ?

इतने में बलबीर शराब पिये आता है। आ कर खाट पर गिर जाता है।

मीना—पिता जी, क्या हुआ आपको ?

बलबीर—तुम कौन हो ?

मीना—मैं तुम्हारी बेटी मीना···

बलबीर—अच्छा···मीना बेटी, खाना दो भूख लगी है।

मीना—पिता जी, आज खाना नहीं बना, राशन ही नहीं था।

बलबीर—क्या बेटी, ऐसी बात है···?

मीना—पिता जी, आप यह शराब पीना छोड़ दो—

बलबीर—बेटी, चिन्ताओं से बचने का यही साधन है···

मीना—परन्तु पिता जी, हम भूखे बैठे हैं और आप शराब···

बलबीर की मस्तक की सलवटें कुछ खुलीं, उसे थोड़ा-सा होश आया

बलबीर—बेटी, तुम समझदार हो, मुझे यह बुरी आदत पड़ गई, जो छूटती ही नहीं; मैं क्या करूँ ?मन को बहुत समझाता हूँ···परन्तु ज्यों ही शाम होती है, मेरे कदम दुकान की ओर मुझे खींच ले जाते हैं।

मीना—पिता जी, आज मुझे एक पर्चा मिला था—

इसमें लिखा है—

"शराब की बुरी आदत से छूटने का सहज उपाय—राज योग।

ब्रह्मा कुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय से सम्पर्क करें।

पता…२५, न्यू रोहतक रोड करोल बाग, नई देहली"

बलबीर—बेटी, कोई मेरी ये बुरी आदत छुड़ा दे, मैं उसका एहसान जीवन भर नहीं भूलूँगा।

मीना–पिता जी, चलो आज ब्रह्मा कुमारी आश्रम पर चलकर देखें।

"तीसरा दृश्य"

ब्रह्मा कुमारी आश्रम का दृश्य, सामने ब्रह्मा-कुमारी राधा बैठी है और तीनों सामने बैठे दिखाई दे रहे हैं।

राधा—कहिये कैसे आना हुआ?

सुशीला—दीदी जी, ये हमारे पति शराब के बुरे आदती बन गए हैं। इनका कुछ उपाय बताओ, हमारा तो घर ही तबाह हो गया है—

राधा—क्यों भाई, आप इस गन्दी आदत के शिकार कैसे बने?

बलबीर—बहन जी, इस बच्चो के दहेज की चिन्ता व अनेक समस्याओं ने मुझे इतना बेचैन कर दिया, जो मुझे शराब पीने से ही शान्ति मिलने लगी। और मैं अपनी इस आदत से खुद भी परेशान हूँ।

राधा—देखो भैया, शराब पीना समस्याओं का निवारण नहीं। इससे तो मनुष्य का मस्तिष्क और ही दूषित व कमज़ोर होता है और उसमें समस्याओं को सामने करने की ताकत नहीं रहती। वह तो मनुष्य को पागल करता है।

मीना—दीदी जी, आज के लोग शराब पीना बड़ी शान समझते हैं।

राधा—बहन, ये सुरा तो असुरों का आहार है। यह तो विष पीने के समान है। इसीलिए संसार में अशान्ति व तनाव बढ़ता जाता है…

सुशीला—दीदी जी, इन्हें आप इस दुष्कर्म से छुड़ाओ तो हमारे घर में भी चैन की बंसी बजे।

राधा—देखो, आपके सामने ये देवताओं के चित्र देख रहे हो। आप पूर्व काल में ऐसे ही पावन देवता थे। देवताएँ हमारे पूर्वज हैं। हमें फिर मनुष्य से देवता बनना है।

बलबीर उस वातावरण में आत्म-ग्लानि महसूस करने लगा। उसे लगा कि शराब पीना…ये तो असुरों का काम है।

राधा—भैया आप तो शुद्ध आत्मा हो, इस देह रूपी मन्दिर में अशुद्ध वस्तुओं का भोग मत लगाओ।

और शराब का नशा तब ही मनुष्य से छूट सकता है जब उससे भी अच्छा नशा मनुष्य को दिया जाए और वह है ईश्वरीय नशा। इसलिए आज से इस नशे में रहो कि मैं तो भगवान का बच्चा हूँ; तो ये मद्यपान का नशा स्वत: ही छूट जाएगा।

मीना—मुझे तो बड़ा आनन्द आ रहा है।

राधा—और सदा के लिए इस बुरी आदत से छूटने के लिए रोज़ यहाँ आश्रम पर आकर ज्ञान-अमृत का पान कर जाया करो। और यहाँ राजयोग सिखाया जाता है। आप ३ दिन आकर उसे सीख लो तो आपका घर स्वर्ग बन जाएगा।

बलबीर—अवश्य बहन जी, आज मेरा मन निर्मल हो रहा है। अभी से हमारा अभ्यास शुरू कराइये…

इस प्रकार ये तीनों ३ दिन का राजयोग सीखते हैं।

"चौथा दृश्य"

सुशीला, मीना और बलबीर घर में बैठे हैं। आज घर का वातावरण बड़ा शान्त नजर आ रहा है।

मीना—पिता जी, मैंने तो जीवन में अब सच्ची शान्ति पा ली है।

सुशीला—देखो, जब से हमने राजयोग सीखा, हम सभी बुरे खर्चों से बच गये, हमारा गरीबी भी धीरे-२ मिटती आ रही हैं।

बलबीर—बेटी मीना, अब तो मुझे कभी शराब पीने की इच्छा भी नहीं होती। दूर से बदबू आती है। अब तो मैं राजयोग द्वारा जीवन की सभी चिन्ताओं से मुक्त होता जा रहा हूँ। सचमुच इन ब्रह्मा कुमा-रियों ने हमें इस घोर पाप से बचा लिया है।

मीना—पिता जी, क्यों न मैं भी राधा बहन की तरह ही मनुष्यों को इन बुरी आदतों से छुड़ाऊँ। मेरा बी० ए० तो अब पूरा हो ही जाएगा। मुझे तो प्रेरणा आती है कि इस मद्य पान के विरुद्ध एक आध्यात्मिक क्रान्ति छेड़ दूँ।

बलबीर—अवश्य बेटी, भगवान तेरी इच्छा पूर्ण करे!

—योगीराज, आबू □

"अभी नहीं तो कभी नहीं"

(ले० ब्रह्मा कुमार मुन्नी लाल, बुन्दू कटरा, आगरा)

कल्प वाद शिव बाबा आये,
करने जग कल्याण।
दुनियाँ से जो लुप्त था;
देने गीता - ज्ञान ॥

देनें गीता ज्ञान, धरा पर,
शिव का हुआ अवतरण।
सुनो भाइयो दे रहा;
सच्चा ईश्वरीय निमंत्रण ॥

अभी धरा पर स्वर्ग आ रहा,
कलियुग जाने वाला है।
संगमयुग तो चल रहा,
अब सतयुग आने वाला है॥

मन में उठी उमंग शीघ्र ही,
सब को ज्ञान सुनाऊँ।
परमपिता के दिव्य ज्ञान को,
सब ही को बतलाऊँ ॥

घर से बाहर जैसे आये,
मिला डाक्टर भाई।
शिव के दिव्य अवतरण की,
उन्हें कथा समझाई ॥

बोले बात सही लगती है,
बिना ज्ञान के गति नहीं है।
लेकिन रोगी इतने ज्यादा हैं,
मुझे योग का समय नहीं है॥

मैंने कहा डाक्टर भाई,
आगे बिल्कुल समय नहीं है।
अभी नहीं जो कर पाये तो
अभी नहीं तो कभी नहीं है॥

आगे चलते ही मिला,
एक कुष्ट का रोगी।
क्षीण गात बिल्कुल था उसका,
सकल से लगता भोगी ॥

विनम्र निवेदन करके उससे
बड़े प्रेम से बोला।
सारा तन-मन निर्मल करने,
आये हैं शिव-भोला ॥

बड़े प्रेम से योग लगा कर,
करो ईश्वरीय सेवा।
निश्चय ही तुम पाओगे,
दिव्य सुखों का मेवा ॥

"रोग मुक्त होने पर ही मैं,
ज्ञान-ध्यान की बात करूँगा।
नहीं तो अपने ही कर्मों से,
आप जिऊँगा आप मरूँगा ॥"

हठकर बोला जाइए,
ज्ञान योग का समय नहीं है।
मन ही मन मैं कह उठा,
अभी नहीं तो कभी नहीं है॥

'बाबू' जी आगे मिले,
चश्मा नाक पर डाले।
सूट पहिन रखा था काला
तन से भी थे काले ॥

मैंने कहा बाबू जी,
सुन लीजै ताजी ख़बर।
शिव भगवान् है आ गये,
जो दुनिया से है ज़बर ॥

ज्ञान-वार्ता बहुत किये,
पर अन्त में ऐसे बोले।
भाई साहब आप भी,
लगते बिल्कुल भोले ॥

फाइलों का अम्बार लगा है,
पत्रों का भन्डार।
मुझको कहाँ समय है,
करूं प्रभू से प्यार ॥

माफ़ करें और जाइए,
समय मुझे है अभी नहीं।
मन ही मन मैं कह उठा,
अभी नहीं तो कभी नहीं ॥

क्रमशः

मांसाहार-नैतिक पक्ष

किसी ने कहा है कि आप मुझे बताइए कि फलाँ मनुष्य क्या-क्या खाता है और मैं आपको बताऊँगा कि उसका चरित्र कैसा है ! वास्तव में यह काफ़ी हद तक ठीक कहा गया है क्योंकि मनुष्य के भोजन का उसके चरित्र से गहरा सम्बन्ध है। परन्तु आज कुछ लोग इस बात को न समझते हुए भोजन को केवल एक रसायन वैज्ञानिक (Chemist) की दृष्टि से ही देखते हैं। आज डाक्टर लोग जब किसी को भोजन के बारे में राय देते हैं तो वे इसी बात पर ध्यान देते हैं कि इस मनुष्य की आयु अथवा इसके व्यवसाय अथवा इसके कद-बुत के हिसाब से उसके लिए कितनी कैलोरीज (Calories) जरूरी हैं। दूसरे शब्दों में वे यह देखते हैं कि इसके कार्य के लिए इसमें कितनी शक्ति की आवश्यकता है। इस हिसाब से वे उसे ऐसे-ऐसे पदार्थ खाने के लिए कहते हैं जिनसे उतनी ही शक्ति (Energy) पैदा हो। या तो वे यह देखते हैं कि इसके भोजन में कौन-से विटामिन, कैल्सियम, गन्धक, शर्करा (Carbohydrates) या प्रोटीन की आवश्यकता है और उसके अनुसार वे उसे कहते हैं—अमुक-अमुक वस्तु खाना। और, यदि किसी में पहले से ही किसी तत्त्व का आधिक्य हो, जैसे मान लो किसी में मोटापा हो या किसी को मधुमेह (Diabetes; शूगर) का रोग हो तो उसे वे ऐसी चीज़ें खाने के लिए मना करते हैं जिनमें चिकनाहट (Fat) या शर्करा आदि अधिक हों।

भोजन के बारे में यह दृष्टिकोण एकांगी है

निस्सन्देह, भोजन की आवश्यकता शरीर को शक्ति अथवा पुष्टि देने, उसमें गर्मी बनाए रखने, उसमें प्रतिदिन होने वाली टूट-फूट को ठीक करने, शरीर के विकास (Growth) के लिए सभी तत्व पहुंचाने तथा शरीर में से व्यर्थ मादे, मल तथा बचे-खुचे हानिकारक तत्वों (Toxins) को निकालने के लिए भी होती है। और, यदि कोई रसायन-विज्ञान-विशेषज्ञ अथवा कोई डॉक्टर इस विद्या के आधार पर परामर्श देता है तो वह मान्य और लाभकर है। परन्तु मनुष्य कोई पशु नहीं है कि केवल उसके शारीरिक पक्ष पर ही ध्यान दिया जाए। मनुष्य के जीवन का नैतिक एवं आध्यात्मिक पहलू भी बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू है। और उसपर भी अगर अधिक नहीं तो उतना ध्यान देना तो जरूरी है जितना कि कायिक पक्ष पर। अतः जैसे भोजन विशेषज्ञ (Dietician) सन्तुलित भोजन (Balanced diet) के बारे में मार्ग-दर्शन देने का अधिकारी (Authority) है, वैसे ही अध्यात्म-निष्ठ व्यक्ति भोजन के नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए भोजन के बारे में विधि-निषेध बताने का अधिकारी है।

क्या भक्ष्य-अभक्ष्य का विषय केवल निजी मामला है ?

परन्तु भोजन के नैतिक पक्ष के महत्व को न समझते हुए कुछ लोग कहते हैं कि भोजन तो मनुष्य का निजी मामला है। जिसको जो प्रिय लगे, वह उसे खाये। इसमें किसी की दख़ल अन्दाज़ी की क्या ज़रूरत है ? हम अपने घर में बैठकर जो कुछ खाते हैं या किसी दोस्त के साथ जाकर होटल में जिस-जिस पदार्थ के लिए फ़रमाइश करते हैं, वह हमारी व्यक्तिगत रुचि और हमारी पसन्द की बात है। उसमें कोई पाबन्दी की बात भला क्यों होनी चाहिए ?

निस्सन्देह कोई व्यक्ति किसी चीज़ को किसी भी मात्रा में खाना चाहे, यह उसकी अपनी इच्छा और आवश्यकता पर निर्भर है। परन्तु जैसे शरीर को ठीक रखने के लिए वह शरीर-विज्ञान-वेत्ताओं से परामर्श लेता है, उसी प्रकार नैतिकता और आध्यात्मिकता की पुष्टि के लिए उसे उनकी बात को भी शिरोधार्य मानना चाहिए जो उसके हित के लिए, अपने ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर, उसे परामर्श देते हैं। दूसरी बात यह है कि जब तक कोई व्यक्ति ऐसी चीज खाता है जिसके खाने से दूसरों को कुछ कष्ट, क्लेश या हानि नहीं होती, तब तक तो वह अपनी इच्छा का स्वामी है परन्तु यदि मनुष्य कोई ऐसी चीज

खाता है जिसके खाने से संसार में अनाचार, दुर्भाव, हिंसा, स्वार्थ, भावना, वैर-वैमनस्य, आदि बढ़ता है तब तो उसके भोजन पर समाज का अंकुश होना आवश्यक है। यों तो जब कोई व्यक्ति कार चलाता है तो कह सकता है कि मैं अपनी मोटर कार (Car) का स्वामी हूँ, मैं जिधर भी जाऊँ और कार (Car) को जहाँ खड़ा करूँ, उसके लिए मुझ पर किसी की रोक-टोक क्यों? सभी जानते हैं कि उसकी बात कुछ ठीक भी है और कुछ ठीक नहीं भी है। हाँ, वह जिधर जाना चाहे, इसके लिए उसे स्वतन्त्रता है, परन्तु उसे जाना अपने बायें हाथ पर (किसी-किसी देश में दायें हाथ पर) ही होगा। अगर किसी ओर से कोई जलूस जा रहा होगा तो उस ओर उसे कार ले जाने की रोक-टोक भी होगी क्योंकि वहाँ उसका दूसरों से भी सम्बन्ध है और उधर कार ले जाने से दूसरों को हानि होने की सम्भावना है। इसी प्रकार वह जहां चाहे कार को रोक सकता है परन्तु वह सड़क के बीच में कार को नहीं रोक सकता, केवल पार्किंग स्पेस (Parking space) में ही रोक सकता है ताकि दूसरों को रुकावट न हो और हानि न पहुंचे। बड़ी बात तो यह है कि यदि वह कार (Car) को ऐसी रीति चलाता है जिससे दूसरों की जान चली जाये तो उससे उसका लाइसेंस (Lincence) छीन लिया जाता है अथवा उसे दण्डित किया जाता है। अतः मनुष्य को खाने का अधिकार तो है परन्तु अपने खाने के लिए किसी को दुःख पहुंचाने का अधिकार उसे नहीं है।

माँस खाने में क्या हर्ज है?

कुछ लोग कहते हैं कि मांस खाने में भला हर्ज क्या है? इसके लिए मना करने का कारण क्या है? इससे दूसरों को हानि क्या होती है? वास्तव में बात बहुत स्पष्ट है—इन्सान एक ऐसा प्राणी है जिससे सहानुभूति, दयाभाव, प्रेम, उदारता और करुणा की आशा की जाती है। जंगली दरिन्दों में और एक नगरवासी या ग्रामवासी मनुष्य में धरती और आकाश का अन्तर है। इन्सान की इन्सानियत इसी में है कि उसमें परोपकार की भावना, पर-पीड़ा को हरने की कामना, दूसरों के प्रति शुभ-चिन्ता सदा बनी रहे। यदि उसमें से ये भावनाएँ निकल जायें तो वह इन्सान के दर्जे से गिर जाता है, वह मनुष्य के वेष में भेड़िया बन जाता है। तब इन्सानियत की बजाय दरिन्दगी उसके मन में डेरे डाल देती है। तब जंगल और नगर में कोई अन्तर नहीं रह जाता? तब पशुत्व और मनुष्यत्व के बीच की रेखा मिट जाती है। अब यदि माँस खाने की आदत या भोजन-प्रणाली पर विचार किया जाये तो **बात स्पष्ट है कि माँस-भक्षी मनुष्य अपना पेट भरने के लिए दूसरे की हत्या कर डालता है।** वह अपने चन्द मिनटों के स्वाद के लिए दूसरों से इस दुनिया की धूप और छाँव में चार दिन जीवन जीने का अधिकार छीन लेता है। जो मनुष्य ऐसा कर सकता है, उसके आगे नैतिक विधि-विधान, आचार संहिताएँ या चरित्र की चर्चा कुछ भी महत्त्व नहीं रखतीं। तब तो वह अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए कुछ भी कर सकता है। जब वह अपने एक बार की भूख मिटाने के लिए दूसरे की गर्दन पर अथवा उसके पेट पर छुरा मरवा सकता है तो फिर उस व्यक्ति से हम जीवन के लेन-देन में, व्यवहार और व्यापार में किस आचार-संहिता की आशा कर सकते हैं? क्या वह नहीं देखता कि जब किसी बकरे को या मुर्गे को किसी कसाई के पास ले जाने लगते हैं तो वह पहले से ही भाँप जाता है कि आज ये हमें मरवाने जा रहा है। तब वे कितने वेग से भाग जाने की कोशिश करते हैं कि जिससे उनका जीवन बच जाए! वे कितना रोते हैं, कितने वेदनापूर्ण स्वर में प्रार्थना करते हैं!! वे कैसे मुंह उठाकर हमसे दया के लिए याचना करते हैं! इस सब हृदय-विदारक दृश्य को देखकर भी जिसके मन में न प्रेम, न दया, न उदारता, न करुणा, न सहायता और न न्याय का भाव उत्पन्न होता है, उस मनुष्य की मनुष्यता की भला क्या कहें! इसी निर्दयता का परिणाम है कि आज संसार में हरेक व्यक्ति अपना ही उल्लू सीधा करने में लगा है, दूसरे की जेब काटकर भी अपनी ही जेब भरने में व्यस्त है। वह आचार की सभी मर्यादाएँ तोड़कर भी अपना स्वार्थ साधने में लग जाता है। इससे ही संसार में अनाचार, दुराचार और हिंसा पनपती है और मंगल में जंगल हो जाता है।

पेड़-पौधों में मस्तिष्क तथा स्नायुमण्डल नहीं होता

कुछ लोग आज यह तर्क करते हुए सुने जाते हैं कि जान तो पेड़-पौधों में भी है। अतः जब हम फल खाते हैं तो अपनी उदर-पूर्ति के लिए दुःख तो हम उनको भी देते ही हैं। वास्तव में यह तर्क भ्रान्तियों

पर आधारित है क्योंकि एक तो पेड़-पौधों में वैसा स्नायुतंत्र (Nervous system) और मस्तिष्क (Brain) नहीं होता जैसे कि पशु-पक्षियों में होता है। इसके अतिरिक्त फल, अनाज, सब्ज़ियाँ इत्यादि जो हम लेते हैं, वे अपने पूर्ण विकास को अथवा अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त हो चुके होते हैं और यदि उस अवस्था में उन्हें न लिया जाए तो उसके बाद उनके गलने, सड़ने और नष्ट होने की स्थिति वैसे भी आ जाती है। फिर, विशेष बात यह है कि पेड़-पौधों में भी प्रोटोप्लाज़्म (Protoplasm) तथा अन्य वे रासायनिक तत्त्व (Chemical Ingredients) तो होते हैं जो कि पशुओं के शरीर में होते हैं परन्तु पेड़, पौधों में आत्मा का वास नहीं होता जैसे कि पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं में होता है। अतः पेड़-पौधे पशुओं पक्षियों की तरह बढ़ते तो हैं परन्तु उनको भय, दुःख अशान्ति नहीं होती क्योंकि न उनमें मस्तिष्क है न बुद्धि, न मन, न आत्मा। अतः उन्हें भोजन के रूप में लेने से दुःख पहुँचाने की बात ही नहीं उठती क्योंकि दुःख-सुख की अनुभूति का प्रश्न आत्मा अथवा मन और बुद्धि से जुटा हुआ है।

पेड़-पौधों मे अनुभवशील आत्मा का वास नहीं है

प्रश्न उठाया जा सकता है कि वनस्पति क्षेत्र में वैज्ञानिकों द्वारा किए गये तजर्बों के आधार पर यह सर्व ज्ञात है कि मनुष्य के अच्छे या बुरे चिन्तन का प्रभाव पेड़-पौधों पर भी पड़ता है; तब यह कैसे न माना जाये कि उनमें भी आत्मा है और वे अनुभवशील हैं? इस विषय में निवेदन यह है कि मनुष्य के विचारों के प्रकम्पनों का प्रभाव तो पेड़-पौधों पर पड़ता है जैसे कि शरीर पर, लेकिन उसका यह अर्थ नहीं है कि पेड़-पौधों में भी चेतनता है अथवा उनमें चेतन आत्मा का निवास है बल्कि इसकी सही व्याख्या तो दूसरी ही है। इसको हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं—

जैसे विद्युत के प्रकम्पन ताँबे, चाँदी, टंग्स्टन अथवा सोने को प्रभावित कर सकते हैं वैसे वे लकड़ी, रब्बर या प्लास्टिक को नहीं कर सकते क्योंकि प्रथमोक्त धातुएँ तो बिजली के लिए योग्य माध्यम (Good conductors of electricity) हैं जबकि उत्तरोक्त लकड़ी, प्लास्टिक आदि बिजली के लिए अनुकूल माध्यम (Conductors) नहीं हैं। उसी प्रकार पेड़-पौधों का प्रोटोप्लाज़्म मनुष्य के विचारों के प्रकम्पनों से प्रभावित होने वाला माध्यम है। उन प्रभावों को देखकर उनमें आत्मा मानना भूल है। पुनश्च, पेड़-पौधों में जीव-जन्तुओं का वास तो हो सकता है और होता है जैसे कि मानव शरीर में भी असंख्य जीवाणुओं का वास होता है, परन्तु हर पौधे और हर पेड़ में किसी स्वामिनी आत्मा का वास नहीं होता जैसे कि किसी शरीर में, शरीर के भोक्ता किसी आत्मा का वास होता है। अतः पेड़-पौधों के फल अथवा उन द्वारा होने वाली उपज के द्वारा मनुष्य अपने भोजन की सामग्री जुटाकर उनके दुःख का निमित्त कारण नहीं बनता।

प्रश्न केवल 'शाकाहार' तथा 'माँसाहार' का नहीं इन्सानियत और अमानुषिकता का है

बात केवल इतनी ही नहीं है, वनस्पतियों में से भी कई चीज़ें ऐसी हैं जो आध्यात्मिक एवं नैतिक उन्नति चाहने वाले मनुष्य के लिए श्रेयस्कर नहीं है। प्याज़, लहसन इत्यादि उनमें शामिल हैं। अतः चर्चा केवल शाकाहार (Vegetarian food) और माँसाहार (Non-vegeterian food) तक ही सीमित नहीं बल्कि आध्यात्मिक उन्नति चाहने वाले व्यक्ति के लिए शाकों, फलों, सब्जियों इत्यादि में से भी वे चीज़ें वर्जित हैं जो उसके मन को सन्तुलित रखने में बाधक हैं, अर्थात् मनुष्य में वासना को भड़काने वाली और उत्तेजना पैदा करने वाली हैं। माँसाहार का एक प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क पर यह भी पड़ता है कि उसमें सहनशीलता अथवा स्थिरता का ह्रास होता है। तजर्बे करके देखा गया है कि जिन मनुष्यों ने माँस खाना छोड़ा, उनमें बर्दाश्त की शक्ति में वृद्धि हुई। अतः नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष के आधार पर माँसाहार वर्जित है। □

मांसाहार और भ्रान्तियां

हम आम लोगों को यह कहते हुए सुनते हैं कि माँस खाने से मनुष्य में शक्ति का संवर्धन होता है। यह एक बड़ी भ्राँति है जिसके आधार पर माँस-आहार का सारा पक्ष टिका हुआ है। यदि हम ध्यान से देखें तो हाथी, घोड़ा, बैल, ऊँट आदि जितने भी बलवान, भार लादने वाले या परिश्रम करने वाले पशु हैं, उनमें से कोई भी माँसाहारी नहीं है। उनमें अधिक समय तक सख्त काम करने की क्षमता है। यदि आप एक शेर को हल में किसी तरह जोत दें तो वह शीघ्र ही थक जाएगा जबकि एक बैल दिन-भर लगा रहेगा। इंग्लैंड में शिकारी कुत्तों, (जो कि स्वभाव से ही माँसाहारी हैं) को कुछ समय अनाज ही के भोजन पर रखा गया, तो देखा गया कि उनमें भी बर्दाश्त और क्षमता (Endurance) में वृद्धि हो गई। अन्वेक्षकों ने अनेक देशों का सर्वेक्षण (Survey) करके देखा है कि वहाँ-वहाँ के जो परिश्रम करने वाले अथवा मेहनत मजदूरी करने वाले वर्ग माँस नहीं खाते[1]—चाहे इसका कारण धन की कमी हो या परम्परा हो, उनकी कार्यक्षमता को देखकर हर कोई मानेगा कि माँस न खाने में ही कायिक भला भी है। इस विषय में हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि प्रोटीन (जिसके कारण ही लोग माँस खाने का पक्ष लेते हैं) शक्ति उत्पादक नहीं है। सक्ति तो शर्करा वाले पदार्थ (Oarbohydrates) तथा चिकनाहट (Fats) वाले पदार्थों से उत्पन्न होती है। प्रोटीन से तो शरीर का गठन होता है। इस बात को समझाने के लिए एक मोटरगाड़ी का दृष्टांत देना ठीक होगा। मोटर अच्छे धातु से बनाने पर मजबूत तो हो सकती है परन्तु उसे चलाने के लिए तो पेट्रोल या डीजल ही चाहिए। शरीर के लिए पेट्रोल या डीजल मुख्यत: शर्करा तथा चिकनाहट वाले पदार्थ हैं जो प्रोटीन या माँसाहार से नहीं मिलते। अत: जो लोग इस विज्ञान से अपरिचित हैं, वे इस भ्राँति का शिकार हुए-हुए हैं कि माँस से शक्ति बढ़ती है। पुनश्च, जहाँ तक प्रोटीन की बात है, भोजन-विद्या-विशेषज्ञों (Dieticians) और रसायन-विद्या-विशेषज्ञ (Chemists) ने यह भी देखा है कि अन्न, बीज, फल, शाक इत्यादि में ऐसे बहुत-से पदार्थ हैं जिनका सेवन करने के बाद मांस-भक्षण की आवश्यकता ही नहीं रहती। उदाहरण के तौर पर सोयाबीन, दालों और मटर में इतना प्रोटीन होता है कि मनुष्य के सन्तुलित भोजन के लिए वह पर्याप्त है।[2]

---

१. ब्राज़ील में श्रमिक चावल, फल और रोटी ही खाते हैं। वे बहुत वजन उठाते हैं और बहुत कम ही बीमार होते हैं। मिस्र देश के किसान बहुत ही हृष्ट-पुष्ट हैं और वे प्राय: शाकाहारी ही हैं। अरेबिया के लोग दूध ओर खजूर ही खाकर जीवन-भर मेहनत करते हैं। इसी प्रकार फ्रांस यूनान, स्पेन, रोम के प्राचीन लोगों के जीवन के बारे में जो खोज की गई है, उस से पता चलता है कि वे प्राय: शाकाहारी होते हुए भी बलशाली थे। डा० अन्ना किंग्सफ़ोर्ड ने 'The perfect way in diet' नामक पुस्तक में इस विषय पर काफ़ी विस्तृत विवरण दिया है।

२. मनुष्य के शरीर में जो प्रोटीन होती है, उसमें कार्बन ५२.२५, आक्सीजन २२.६५, हाईड्रोजन ६.६५, नाईट्रोजन १५.८८ और गन्धक (Sulphur) २.२५ के अनुपात से होता है। नीचे हम कुछ अनाजों और मांस में इसका अनुपात दे रहे हैं—

	कार्बन	हाईड्रोजन	नाईट्रोजन	गन्धक	आक्सीजन
मटर	५२.६५	६.६५	१७.२५	०.४२६	२२.७३
फलियां	५१.७२	६.६५	१८.०५	०.३८५	२२.६०
सोयाबीन	५२.१२	६.६३	१७.५३	०.७१०	२२.७१
गेहूँ	५२.७२	६.८६	१७.६६	१.०२७	२१.७३
गाय का दूध	५२.१६	७.१८	१५.७७	१. ७३	२३.१३
माँस	५२.६८	७.२०	१६.८०	०. ४२	२०.५१

स्पष्ट है कि अन्नों, दालों तथा मांस के प्रोटीन के तत्त्वों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। बल्कि अन्नों तथा दालों में नाईट्रोजन अधिक होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि माँस से मनुष्य को सीधे ही (Direct) प्रोटीन मिलता है। उनकी यह मान्यता पाचन-क्रिया और सम्बन्धित रसायन विज्ञान (Bio-Chemistry) की अनभिज्ञता पर आधारित है क्योंकि वास्तव में माँस सीधा माँस में नहीं मिलता बल्कि हम जो भी प्रोटीन लेते हैं, वह एक प्रकार के तेजाबी, मादे, जिन्हें अमीनो एसिड्स (Amino acids) कहते हैं, के रूप में परिवर्तित होता है और शरीर के जिस-जिस हिस्से में जिस रूप में ज़रूरत हो, वहाँ वे प्रयुक्त हो जाते हैं। और, यह बात प्रसिद्ध है कि किसी एक मनुष्य के माँस के जो प्रोटीन होते हैं, वह दूसरे प्राणी के माँस के प्रोटीन से भिन्न ही होते हैं। अतः सीधे ही जाकर इसके शरीर के माँस में वृद्धि का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

माँसाहार हानिकारक

देखा जाए तो माँस में इतना यूरिक एसिड (Uric-acid) होता है जिसका प्रभाव गुर्दों पर बुरा पड़ता है क्योंकि उन्हें अधिक यूरिया के निष्कासन का काम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, माँसाहार तो वैसे भी हानिकारक है क्योंकि यह मानी हुई बात है कि मनुष्य के भावों का प्रभाव उसके शरीर पर भी पड़ता है और जब किसी पशु को वध के लिए ले जा रहा होता है उस समय उसके भय, क्रोध, चिन्ता आदि का प्रभाव ऐसा होता है कि उससे कई विषैले तत्त्व उसके रक्त और माँस में जा मिलते हैं और इन सबसे वह विषाक्त और अभक्ष्य हो जाता है।[3]

मनुष्य की शरीर संरचना माँसाहार के अनुकूल नहीं

फिर विशेष बात यह है कि मनुष्य के शरीर की रचना ही ऐसी है कि वह माँस-भक्षण के अनुकूल ही नहीं है क्योंकि देखा गया है कि जो माँस खाने वाले जानवर हैं, उनके दाँत नौकीले होते हैं, उनकी अन्तड़ियाँ छोटी होती हैं और उनके पंजों की बनावट चीर-फाड़ करने के योग्य होती है और उनके जबड़े बकरी या गाय के जबड़ों की तरह दाँये-बाँये हिलने-जुलने वाले नहीं होते बल्कि कुत्ते के जबड़ों की तरह एक ही स्थान पर सुदृढ़ होते हैं। इसके विपरीत मानव के दाँत प्रायः चपटे होते हैं, उसकी अंतड़ियाँ छोटी नहीं हैं और उसके हाथों की बनावट भी अलग प्रकार की है। यह भी देखा गया है कि माँस खाने वाले जानवरों के सामने जब कोई तरल पदार्थ रखा जाता है तो वे उसे होंठों के द्वारा पीते नहीं बल्कि ज़बान निकालकर चाटते हैं। इन सभी से यह प्रमाणित है कि माँस मनुष्य का भोजन नहीं है।

शाक और दाना खाने वाले पशुओं का वध करने की बजाय शाकाहार ही क्यों नहीं?

ध्यान देने के योग्य एक बात और भी है। मनुष्य प्रायः उन्हीं पशुओं ही का तो माँस खाता है जो स्वयं माँसाहारी नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर बकरी, मुर्गा आदि माँसाहारी नहीं हैं। अतः जबकि वे दाना या शाक आदि खाकर प्रोटीन तथा अपना माँस बना लेते हैं तब क्या मनुष्य स्वयं ही अन्न या शाक आदि खाकर अपने लिए प्रोटीन नहीं ले सकता? जो मनुष्य माँस खाता है, वह अपने शरीर के उन भागों का प्रयोग नहीं करता जो प्रोटीन बनाने का कार्य करते हैं। अतः वास्तव में यह उसके शरीर के लिए हानिकारक है क्योंकि जिस भाग का प्रयोग न किया जाए वह धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है।

संसार में अन्न की कमी का बहाना भी धोखा है

कुछ लोग कहते हैं कि संसार में इतना अन्न और इतना शाक उत्पन्न नहीं होता कि सभी मनुष्य उससे पेट भर सकें। अतः वे कहते हैं कि माँसाहार इसलिए भी आवश्यक है ताकि सभी को खाना मिल सके। वास्तव में माँसाहार का पक्ष लेने वालों की यह भी एक भ्रांति ही है। क्या पृथ्वी हमें इतने फल, शाक और अन्न नहीं देती कि हम उससे पेट भर सकें? यह तो कुदरत पर मिथ्या दोष है। यदि हम संसार के विभिन्न देशों की ओर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि माँस और अण्डा खाने वाले देशों में न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, केनेडा, अमेरीका, इंग्लैण्ड और डेन-

३. पशु के शरीर में जो व्यर्थ मादा (Waste products) बाहर निकलने की क्रिया में होते हैं, वे अभी रक्त में ही होते हैं कि पशु को मार दिया जाता है। अतः वे उसके मांस में ही रह जाते हैं। पुनश्च, यह भी देखा गया है है कि पशु के माँस में, उसके मूत्र (urine) से भी अधिक यूरिक एसिड होता है। फिर विशेष बात यह कि मारे जाने से पहले पशु में जो डर और आवेश पैदा होता है, उससे भी उसके माँस में विषैले तत्त्व आ मिलते हैं।

मार्क ही मुख्य हैं और इनके साथ आप फ्राँस और जर्मनी को भी ले सकते हैं। परन्तु यदि इन देशों के अन्नोत्पादन के आँकड़ों पर आप ध्यान दें तो आप देखेंगे कि वहाँ इतना तो अन्नादि होता है कि हरेक व्यक्ति को लगभग एक पाऊण्ड गेहूँ मिल सकता है। पुनश्च, अन्य देश, जहाँ जन-संख्या बहुत है परन्तु अन्न का उत्पादन उतना नहीं है, वहाँ भी यदि खेती के आधुनिक साधनों का प्रयोग किया जाए तो अन्न की कमी न होगी। उदाहरण के तौर पर भारतवर्ष में जब से खाद के कारखाने बने हैं और खेती के लिए ट्यूब वैल लगाये गये हैं, ट्रैक्टर प्रयोग होने लगे हैं और अच्छे बीज प्राप्त होने लगे हैं तब से अन्न के उत्पादन में काफ़ी वृद्धि हुई है। फिर समस्या का हल इसमें नहीं कि अधिकाधिक माँसाहारी बना जाए बल्किहल यह है कि जन-संख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण किया जाये क्योंकि जन-संख्या की वृद्धि से केवल अन्न की नहीं बल्कि रोजगार, निवास-स्थानादि की भी समस्याएँ बढ़ती हैं। यदि अन्न हो भी सही तो लोगों का आर्थिक स्तर ऐसा है कि वे अन्न खरीद नहीं सकते। इसके लिए भी जनसंख्या की वृद्धि की दर को कम करना ज़रूरी है। अतः निष्कर्ष यह हुआ कि अन्न की कमी का तर्क ग़लत है क्योंकि अन्न तो पर्याप्त मात्रा में है और इससे अधिक भी पैदा किया जा सकता है। फिर हमें यह भी देखना चाहिए कि माँसाहार वालों के लिए जो मुर्ग़ीखाने (Poultry) बनाये जाते हैं, उससे तो अधिक ही अन्न ख़र्च होता है क्योंकि विज्ञ लोगों ने हिसाब लगाया है कि मुर्ग़े से मनुष्य को जितना प्रोटीन मिलता है, उससे कई गुणा अधिक तो मुर्ग़ा अन्न खा जाता है।

जहाँ अन्न उत्पन्न ही नहीं होता, वहाँ क्या करें ?

ऐसे भी लोग हैं जो कहते हैं कि संसार में कई स्थानों पर अन्न उत्पन्न ही नहीं होता; वहाँ तो बर्फ़ ही बर्फ़ होती है या चारों ओर रेगिस्तान होता है; अतः वहाँ तो मनुष्य को माँसाहार करना ही पड़ता है। वे टुंड्रा और सहारा का उदाहरण देते हैं। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य की तो शरीर-रचना ही ऐसी है कि वह ऐसे वायुमण्डल में रहने के लिए है ही नहीं। उदाहरण के तौर पर हम देखते हैं कि टुंड्रा में रहने वाले रेण्डियर की खाल और उसके बाल वहाँ के वायुमण्डल के अनुकूल ही हैं जबकि मनुष्य के ऐसे नहीं हैं। अतः वास्तव में मनुष्य को ऐसे इलाकों में रहने की आवश्यकता ही नहीं। तो भी यदि वहाँ थोड़े से लोग रहते हैं तो क्या हमें उन लोगों का अनुकरण करना है जो श्रेष्ठ सभ्यता और दिव्य संस्कृति से नितान्त दूर हैं ? अतः यह तर्क भी निराधार ही है।

माँसाहार न करने से पशु बढ़ जायेंगे—यह कैसा तर्क !

आपको ऐसे भी व्यक्ति मिलेंगे जो यह कहेंगे कि—'यदि हम माँसाहार न करें तो संसार में पशुओं आदि की संख्या इतनी बढ़ जाएगी कि सारा संसार ही एक दिन उनसे भर जाएगा और हमें न रहने को जगह मिलेगी न खाने को अन्न। वास्तव में ऐसा सोचना भी मनुष्य की भूल है। कुदरत की ओर से संसार में सब व्यवस्था बनी ही हुई है। मनुष्य के हस्तक्षेप से तो वातावरण में सन्तुलन (Eco-balance) ही बिगड़ गया है। संसार में सभी प्रकार के पशुओं पक्षियों का कुछ-न-कुछ महत्त्व है और एक के जीवन का दूसरे के जीवन के साथ किसी-न-किसी प्रकार सम्बन्ध है। मनुष्य को इस सारे वायुमण्डल में सभी जीव-प्राणियों के महत्त्व का पता ही नहीं है, अभी केवल कुछ ही की उपयोगिता का ज्ञान उसे होने लगा है। आज यह सर्व विदित है कि किस प्रकार मनुष्य ने अपनी न-समझी से वातावरण के सन्तुलन को बिगाड़ दिया है।

माँसाहार अनाचार है

कहीं-कहीं यह भी तर्क सुना जाता है कि पशु हम पर आक्रमण करें तो हम क्या करें ? तब तो हमें उनका हनन करना ही पड़ता है। वास्तव में यह प्रश्न ही अलग है। सरकार की ओर से जो कानून बना हुआ है, उसके अनुसार भी यदि किसी द्वारा आक्रमण होने पर आत्म-रक्षा (Self-defence) करने के लिए यदि कोई आक्रमणकारी को चोट पहुँचाता है तो वह अपराधी नहीं माना जाता। फाँसी या आयु-भर कैद का दण्ड तो उन्हीं को मिलता है जो स्वयं दूसरे पर आक्रमण करते, उसमें सहयोग देते या उस योजना में भाग लेते हैं। इसलिए कहा गया है कि माँस बनाने, बेचने, पकाने और खाने वाले, सभी दोषी हैं। अब देखा जाय तो मुर्ग़ा, बकरा या ऐसे दूसरे पशु जिनका

मनुष्य माँस खाता है, वे मनुष्य की हत्या करने वाले या उसपर आक्रमण करने वाले पशु नहीं हैं। वे हमें कोई हानि नहीं पहुँचाते हैं, अत उन्हें मारने के लिए तो कोई भी सही आधार नहीं है। वास्तव में तो मनुष्य को "जियो और जीने दो" (Live and let live) की नीति का पालन करना चाहिए वरना दूसरे पशुओं एवं प्राणियों से उसकी श्रेष्ठता ही क्या रही ?

बाकी तर्क-वितर्क को छोड़ भी दिया जाए तो विशेष बात यह है कि जिस मनुष्य को पशुत्व के दर्जे से ऊँचा उठने की इच्छा है, जो अपना नैतिक और आध्यात्मिक विकास करना चाहता है, जो कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त कर योगी बनना चाहता है, उसे तो हिंसा और स्वार्थ को छोड़कर प्राणियों पर दया का मार्ग अपनाना ही चाहिए और माँसाहार का अवश्य त्याग करना ही चाहिए।

जो लोग डार्विन के विकासवाद के अनुयायी हैं, वे कहते हैं कि आदि-मनुष्य तो शिकारी और माँसाहारी ही था। अतः यदि अब भी मानव माँस खाता है तो क्या आपत्ति है? उनकी यह मान्यता भी वास्तव में ग़लत है। विकासवाद के बारे में तो अनेकानेक ऐसे अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनसे सिद्ध हो जाता है कि विकासवाद कोई सिद्ध कोटि का वाद नहीं है। इस विषय में 'विश्व का भविष्य' नामक पुस्तक का २०वां अध्यायदेखिए। और तो क्या स्वयं इस वाद के कर्त्ता चार्ल्स डार्विन के अपने मित्रों को लिखे हुए जो निजी पत्र मिले हैं उनसे ही स्पष्ट है कि वह स्वयं भी मानते थे कि उनका मत प्रमाणित नहीं है। अच्छा, यदि उनके मत के अनुसार मानव का पूर्वज वानर था, तब वानर तो माँसाहारी नहीं हैं। अतः जबकि मानव के पूर्वज माँसाहारी नहीं थे और आज भी (वानर) माँसाहारी नहीं तब तो उसे भी माँस-भक्षी नहीं होना चाहिए। फिर, वानर जाति के बाद जो 'आदि मानव' हुआ वह तो वन-विहारी, असभ्य, अशिक्षित एवं असंस्कृत था। आज तो मनुष्य सभ्य, सुसंस्कृत और सुशिक्षित एवं विकसित होने का दावा करता है। तब इस विषय में जंगली जानवरों का अनुकरण करना तो निरर्थक ही है। इस पर भी यदि मनुष्य समय देकर इस तथ्य की विस्तृत व्याख्या समझे तो उसके समक्ष स्पष्ट किया जा सकता है कि मानव के पूर्वज तो देवी-देवता थे। आज भी उन देवी-देवताओं के स्मरण-चिह्न (उनकी प्रतिमाएँ) मन्दिरों में पूजी जाती हैं तथा उनके यशोगान में उनके दिव्य गुणों का वर्णन किया जाता है। श्री कृष्णादि देवताओं के भोग का जब वर्णन किया जाता है, उसमें ३६ प्रकार के फल-मेवे और पदार्थों का वर्ण होता है परन्तु माँस का तो कहीं भी उल्लेख नहीं होता। आज द्वारका में, नाथ द्वारे में जगनाथ (पुरी) आदि के मन्दिरों में जो भोग लगाया जाता है, वहाँ इस मलेच्छहार का तो नाम लेना ही पाप है।

हाँ, आपको कुछ ऐसे भी व्यक्ति मिलेंगे जो यह कहेंगे कि श्री राम ने तो वनवास के दिनों में माँस भक्षण किया था। हाय, हाय, उन्हें यह कहते हुए ज़रा भी लज्जा या सँकोच का अनुभव नहीं होता! श्रीराम के भक्त—महात्मा गाँधी—माँस के कट्टर विरोधी और शुद्ध शाकाहारी थे और जो राम का अनुकरण ज़रा भी नहीं करते, वे कहते हैं कि राम शिकार करते थे और माँस···। वे रामायण के पन्नों को खोल कर दिखाने के लिए तैयार हो जाते हैं। एक ओर वे राम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' मानते हैं और 'भगवान' या 'देवता' की संज्ञा देते हैं और 'राम-राम' जपने की बात कहते हैं। और दूसरी ओर राम के बारे अनापशनाप कहते हैं! यह तो 'मुंह में राम-राम और बग़ल में छुरी' वाली बात आ गई। यदि वे ऐसे राम के ही अनुयायी बनते हैं तो लटकायें कन्धे पर तीर-कमान! आज इतनी सीताओं का अपहरण होता है, उनको छुडाने के लिए करें वे युद्ध। वे अपने पिता के लिए करें चौदह वर्ष बनवास। आज तो लोग अपने पिता और खेती को छोड़कर चालीस वर्ष नगर-बास को चल पड़ते हैं।

वास्तव में राम-रावण की आध्यात्मिक कहानी क्या है उस लाक्षणिक कथा का उच्च भाव क्या है, क्या दस सिरों वाला रावण था भी या नहीं—ये सभी रहस्य ठीक तरह समझने की ज़रूरत हैं। इसको समझाने के बाद मांस खाने की बात तो एक ओर रही, मनुष्य माँस को देखना भी अच्छा नहीं समझेगा आज भी राम-उपासी, वैष्णव लोग अहिंसा ही को परमधर्म मानते हैं। गुजराती में तथा अन्य भाषाओं में भी ऐसे गीत बने हुए हैं कि "सच्चा वैष्णव वह नर

मानिए जो पीड़ पराई जाणे रे···।" जिस दुकान पर वैष्णव भोजनालय या ब्रह्म भोजन लिखा होता है लोग उससे यही समझते हैं कि यहाँ शाकाहारी भोजन ही मिलता होगा। अत: राम के बारे में मिथ्या बातें सोचना, अशुद्धाहार करने के लिए ग़लत बहाना ढूंढना है और मिलावटी व्यापारियों की तरह पहले के किताबी मिलावटी लेखकों का अन्धानुकरण करना हैं।

अच्छा पहले कोई खाता भी रहा हो तो क्या इसी को आधार मानकर आज, जब हम उसकी बुराई और अनैतिकता को समझ चुके हैं, भी हमें खाते चले जाना चाहिए? यदि अन्य कोई व्यक्ति ग़लत काम करता भी है तो उसका उदाहरण देकर क्या हमें भी वह ग़लत काम करना चाहिए? एक ज़माना था लोग वनों में शेर का शिकार करते थे परन्तु आज सरकार ने इसपर पाबन्दी लगा रखी है और इस को तोड़ने वाले को दण्डित किया जाता है। तब क्या इस बात को आधार मानकर आज भी शेर का शिकार किया जाये कि पहले लोग शिकार करते थे? एक ज़माना ऐसा आया था कि लोग एक से अधिक पत्नी कर लिया करते थे परन्तु आज इसपर कानून के द्वारा भी पाबन्दी है। तब क्या आज भी मनुष्य एक-दार (Monogamy) के नियम को छोड़कर बहु-विवाह को अपनाये? आज तो यह नियम है कि अनेक नगरों में सरकार से आज्ञा लिए बिना आप अपने पड़ोस में लगे हुए वृक्ष को भी नहीं काट सकते। आज किसी को भी यह अधिकार नहीं कि वह दूसरे किसी मनुष्य को डंडे से भी पीट सके। स्वयं सरकार को भी यह अधिकार नहीं कि वह मुकद्दमा किये बिना तथा सन्तोषजनक कारण बताये बिना किसी को बन्दी बना सके या मृत्यु दण्ड दे सके? तब भला मनुष्य को यह क्या अधिकार है कि वह पशु-पक्षियों के जीवन के साथ खिलवाड़ खेलता है? वह किस धारा या नियम के अनुसार उनकी हत्या करता है। जब वह किसी को जीवन दे नहीं सकता तो उसे छीनने का क्या अधिकार है?

एक ग़लत काम को करने के लिए मनुष्य अनेक प्रकार की उल्टी-सीधी बातें बनाता है। वह कहता है कि ईसाई धर्म के ईसा भी तो इतने बड़े धर्म-स्थापक होकर मछली खाते थे। उसे यह शायद मालूम नहीं है कि ईसा के मुख्य शिष्य और ईसाई मत के प्रसिद्ध प्रचारक पीटर (Peter), जेम्स, मेथ्यु (Matthew), डेनियल आदि माँसाहारी नहीं थे। यूनानी दार्शनिक अरस्तु (Aristotle), अफ़लातून (Plato), सुकरात (Socretes), प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन (Newton), अंग्रेजी कवि मिलटन, पोप, शैले, लेखक बायरन, नाटककार बर्नार्ड शॉ (Bernard shaw) आदि भी शाकाहारी ही थे।

बर्नार्ड शा को कुछ डाक्टरों ने कहा—आप थोड़ा-बहुत माँसाहार ज़रूर कीजिए वरना, आप मर जाएँगे। इसके उत्तर में बर्नार्ड शॉ ने कहा—"चलो आपकी बात का परीक्षण हम करते हैं। अगर मैं बच गया, तब तो मैं आशा करता हूँ कि आप सभी शाकाहारी बन जायेंगे।"[1]

परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि बर्नार्ड शा तो मरे नहीं बल्कि ग़लत सिद्ध होने पर भी डाक्टर लोग शाकाहारी नहीं बने। यह तो हठधर्मी ही है। उन डाक्टरों की बात को लेकर ही बर्नार्ड शा ने उस अवसर पर जो शब्द लिखे थे, वे पठनीय हैं। उन्होंने लिखा—

"मेरी स्थिति स्पष्टत: गम्भीर है। मुझे कहा गया है कि अगर मैं गौ या बैल का माँस खाऊँगा तभी ज़िन्दा रह सकूंगा, वरना नहीं। परन्तु मैं मानता हूँ कि माँसाहार से तो मृत्यु अच्छी है। मैंने जो अपनी वसियतनामा (Will) लिखा है, उसमें अपनी क्रिया-कर्म के बारे में निर्देश दिये हैं। मैंने लिखा है कि शव के पीछे मातमी लोगों की गड़ियाँ न होकर बैल, भेड़ें मुर्ग़ियों के झुण्ड तथा एक चलने वाला मछली दल (Acquarium) होगा और इन पशुओं तथा मुर्गों ने श्वेत दोपट्टे या रूमाल लिए होंगे जो इस बात के सूचक होंगे यह उस व्यक्ति के सन्मान में है जिसने इस संसार के माँसाहारी जीवों को खाने की बजाय

1. Well, let us try the experiments. Only if I survive, I shall expect you all to become vegeterians."

मर जाना स्वीकार किया। उसमें नूह के मेहराब (Ark of Noah) को छोड़कर बाकी सब-कुछ होगा ये अपनी प्रकार का एक अद्‌भुत दृश्य होगा।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस किसी के भी मन में मानवी गुण (Humahn values) हैं, उसने माँस को खाना अनैतिक माना है। अतः आध्यात्मिकता तथा नैतिकता के लिए पुरुषार्थ करने वाले हरेक व्यक्ति को चाहिए कि वह माँसाहार रूप अनैतिक व्यवहार को इसी क्षण से लेकर दृढ़ संकल्प से सदा के लिए छोड़ दे।

पिछले दिनों समाचार पत्रों में एक समाचार छपा था जिसमें बताया गया था कि इंग्लैंड की रानी मारग्रेट के पति कैप्टिन फ़िलिप पर वहाँ की सरकार ने इसलिए मुकद्दमा किया है कि उसने अपने दौड़ के घोड़े (Race horse) को, उससे नाराज़ होकर, लात मारी जिससे उस घोड़े को दुःख हुआ! देखिये तो स्वयं राजघराने के ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति पर भी, अपने ही घोड़े को कष्ट देने के परिणामस्वरूप दण्डित किया जायगा!

इसी प्रकार, आप जानते होंगे कि प्रायः सभी-देशों में—भारत में भी—आज जानवरों की निर्दयता से बचाने की सरकारी सहायता-प्राप्त संस्थाएँ (State Prevention of Cruelty to animals) बनी हुई हैं। यदि कोई मनुष्य अपने तांगे अथवा अपनी बैलगाड़ी पर निर्धारित वज़न से अधिक बोझ लेकर जा रहा हो, अथवा अपने घोड़े अथवा बैल को ठीक तरह न खिलाता हो जिससे कि वह दुर्बल हो गया हो या घोड़े को घाव हों और वह उसका इलाज न करता हो अथवा उस संस्था (SPCA) का कोई कर्मचारी कोचवान को अधिक चाबुक मारता देख ले तो वह उसे पकड़ ले जाता है। जब इस सभ्यता की ऐसी स्थिति है तो इस कर्म-प्रधान जगत् में पशु-पक्षियों को मार कर उनको खा जाने वालों की क्या गति होगी! आश्चर्य है कि सरकार इसे 'निर्दयता' (Cruelty) के अन्तर्गत लेकर इसके विरुद्ध कानून नहीं बनाती। परन्तु, कुछ भी हो, मनुष्य को अपने किये कर्मों का परिणाम तो भुगतना ही पड़ता है। अतः कर्म गति को समझ माँसाहार को त्यागना चाहिये। □

2. My situation is solemn one. Life is offered to me on condition of eating beaf steaks. But death is better than cannibalism. My will contains directions for my funeral, which will be followed not by mourning coaches, but by oxen, sheeps, flocks of poultry and a small travelling acquarium of live fish, all wearing white scarves in honour of the man who perished rather than ate his fellow creatures. It will be, with the exeption of Noahe's ark, the most remarkable thing of t he kind seen."

इन्सान की इन्सानियत

आज मनुष्य कैसा निर्दयी हो गया है! वह कल तक जिसे अपने हाथों से घास या दाना खिलाता था, आज उसकी जान लेने को तैयार हो जाता है! जो पशु-पक्षी कल तक उसके घर में पलते-पलते उसके परिवार के 'सदस्य-से' बन गये थे, आज वह उनको खाने को तैयार है! क्या यही इन्सान की इन्सानियत है। क्या इसे 'ईश्वर का पुत्र' या 'भगवान का बेटा' कहा जा सकता है!! भोले-भाले और बेज़ुबान जानवरों की चीख़ो-पुकार के प्रति उसका दिल ऐसा अटूट पत्थर-सा हो गया है।

संसार में कितने ही रसीले और पौष्टिक पेय तथा खाद्य-पदार्थ हैं परन्तु इन्सान की बुद्धि पर कैसा पर्दा पड़ गया है कि वह उनके बावजूद माँस खाता है! कुछ जातियाँ मुर्दे को जलाने की बजाय कब्र में दफ़ना देती हैं। आज के इन्सान का पेट भी गोया एक कब्र ही बन गया है जिसमें वह मांस को भूनकर दफ़ना देता है। गोया आज का मनुष्य चलता-फिरता पशुओं का कब्रिस्तान अथवा मानवी श्मशान (Human Crematorium) है।

मानव होते यदि भगवान

ब्र० कु० नन्दकिशोर

गीता का उद्धार करो तो होगा सब जग का कल्याण।
श्रीकृष्ण को भूल के कारण समझ लिया सबने भगवान ।।
गीता ज्ञान से होता है, ऊंच चरित्र ओ नव-निर्माण।
गीता कृष्ण की है निर्माता, देव ही बनते हैं इन्सान ।।
गीता-श्रीमत पर जो मानव, तन-मन-धन करता बलिदान।
पाता है सतयुग में जाकर, श्रीकृष्ण का जन्म महान ।।
निर्विकारी श्री कृष्ण हैं, सोलह कला से उज्ज्वल नाम।
मनुष्य देवता बन जाता है, वह न बन सकता भगवान ।।
मानव को देवत्व दिलाने को "गीता" निश्चित विज्ञान।
तमोप्रधानता विनाश करना, है गीता का विषय प्रधान ।।
युग परिवर्तन लाती गीता, नहीं युद्ध से इसका काम।
कमल समान रहे जब मानव, मानव का होता उत्थान ।।
गीता-ज्ञान सुनाने का, देवों में न कोई विधान।
इसीलिये यह अनुपम गीता, प्रवचन करते शिव भगवान ।।
गीता का उद्धार करो तो समझ में आवेगा यह ज्ञान।
श्रीकृष्ण को भूल के कारण, समझ लिया सबने भगवान ।।
कृष्ण दैवी मानव ही थे, मानव नहीं होता भगवान।
मानव होते यदि भगवान, तो दुःख का न होता नाम ।।
मानव होते यदि भगवान, घर-घर होता स्वर्ग महान।
मानव होते यदि भगवान, कभी फैलता न अज्ञान ।।
मानव होते यदि भगवान, कोई न करता पूजाध्यान।
मानव होते यदि भगवान, अवतारों का क्या था काम ?
मानव होते यदि भगवान, कैसी तपस्या क्यों वरदान।
मानव होते यदि भगवान, क्यों तीरथ क्यों गंगा स्नान ।।
मानव होते यदि भगवान, क्यों हिन्दू बौधी मुसलमान ?
मानव होते यदि भगवान, क्यों पैदा होते शैतान ?
श्रीकृष्ण तो सतयुग वासी, वहाँ न गीता का कुछ काम।
दुःख निवारिणी अनुपम गीता, प्रवचन करते शिव भगवान ।।
गीता का उद्धार करो, तब ईश्वर की होगी पहचान।
श्रीकृष्ण को भूल के कारण समझ लिया सबने भगवान ।।

(शेष पृष्ठ ३६ पर)

अपंगों, विकलांगों, कैदियों तथा हरिजनों की ईश्वरीय सेवा

इस कलिकाल में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो सर्वांग-सुन्दर, सदा-स्वस्थ और सर्व-इन्द्रिय सम्पूर्ण हो तथा पूर्णतः रोग-रहित भी हो। हरेक व्यक्ति को बचपन से लेकर अब तक कहीं-न-कहीं चोट तो लगी ही होगी, घाव तो हुआ होगा या फोड़े-फुँसी ने अपना कोई दाग़ तो दिया ही होगा। इसी-लिए ही तो हर व्यक्ति की शनाख़्त (identification) में उसके मस्तक, गर्दन, ठोड़ी आदि पर लगे किसी-न-किसी निशान का उल्लेख किया जाता है।

जब हम जन-सम्पर्क में आते हैं तो देखते हैं कि किसी ने ऐनक (Glasses) लगा रखी हैं तो किसी ने बनावटी दाँत लगा रखे हैं, किसी को मोतिया (Cataract) या पीलिया (Jaundice) है तो किसी की दाढ़ में दर्द है। किसी का हाज़मा ठीक न होने के कारण वह चूर्ण की गोलियाँ खा रहा है तो किसी के कान ठीक प्रकार से सुन नहीं सकते और वह ऊँचा बोलने के लिए कह रहा है। कोई नींद की गोली खा रहा है तो कोई खाँसी और ज़ुकाम (Ear, Nose and-Throat) के कष्ट से कर्राह रहा है। कोई लाठी लेकर चल रहा है तो कोई बेचारा कमर झुका कर रास्ता पार कर रहा है। इस प्रकार, हरेक को कोई-न-कोई आधि-व्याधि तो घेरे ही हुए है। पूर्णतः स्वस्थ और सर्वांग सुन्दर और सर्वांग-सुरक्षित तो सतयुग के देवी और देवता ही होते हैं। यही कारण है कि यदि किसी देवी या देवता की मूर्ति का कोई अंग टूट जाता है तो उसे पूजा के लिए काम में नहीं लाया जाता क्योंकि देवता अंग-भंग नहीं होते। परन्तु इस कलियुग में तो कोई भी मानव-तनधारी आत्मा देवता (पूर्णतः दिव्य) तो है ही नहीं; इसलिये उसकी काया कंचन-सम एवं निरोगी नहीं है और उसे तन का आयु-पर्यन्त एक-रस सुख भी प्राप्त नहीं है। तन का सदाकालीन सुख तो मनुष्यात्मा को जीवनमुक्त, 'दिव्य गुण सम्पन्न' देवता बनने से ही मिल सकता है; इस कलियुगी सृष्टि में तो थोड़ा-बहुत कायिक कष्ट हरेक को कभी-न-कभी और किसी-न-किसी रूप में होता ही है।

देखने, सुनने या बोलने की शक्ति से वञ्चित लोगों की सेवा

निस्सन्देह, इस कलिकाल में तन के सर्व तथा सम्पूर्ण सुख किसी विरले ही को प्राप्त होते हैं, तथापि जो लोग नेत्रहीन या श्रोत्रहीन हैं या वाक्‌शक्ति-विहीन हैं, वे विशेष तौर से एक महत्त्वपूर्ण इन्द्रिय से वञ्चित हैं और इसलिए अन्य लोगों की तुलना में वे क्षति की अवस्था (Position of disadvantage) में हैं। चाहे उनकी यह क्षति उनके अपने ही किन्हीं पूर्व कर्मों का परिणाम हो या सामप्रतिक समाज की अवहेलना के कारण से हो, वे अपनी उस क्षति के कारण विशेष सेवा, सहयोग तथा सहानुभूति के पात्र हैं।

पुनश्च, चाहे कोई सूरदास हो चाहे बधिर और चाहे गूँगा, क्षति तीनों को लगभग बराबर ही है। यों कहा तो गया है कि "आँख गयी तो जहान गया", अरन्तु जैसे नेत्र शरीर का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग हैं वैसे ही कान और वचनेन्द्रिय भी हैं। अतः अपंगों और विकलांगों के प्रति सेवा-भाव और सहानुभूति से प्रेरित होकर ही धनाड्य लोग या समाज-सेवक उनके लिए 'अन्ध विद्यालय' खुलवाते हैं जहाँ ब्रेल (Braille) प्रणाली से उन्हें शिक्षा दी जाती है ताकि वे भी विद्या प्राप्त कर सकें। कई जगह नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए गान्धर्व विद्यालय भी खुले हुए हैं जहाँ उन्हें गाना बजाना सिखाया जाता है।

निस्सन्देह, उनके लिए ऐसे विद्यालय और संगीतालय खोल कर उन्हें विद्या या संगीत-शिक्षा देना भी एक सेवा ही है परन्तु वास्तव में उनके लिए **सबसे बड़ी सेवा उन्हें ऐसी विद्या देना है जिससे उन्हें तीसरा चक्षु (Third Eye) अथवा 'दिव्य चक्षु' (Divine-Eye) प्राप्त हो।** अब उनकी दो नेत्रों की दृष्टि तो किसी-न-किसी कारण चली गई है परन्तु इन दो अखियन में भी प्रभु का नूर समा जाये और तीसरा

नेत्र प्राप्त हो जाय—ऐसा उपाय क्यों न किया जाय ? अब वास्तव में ईश्वरीय ज्ञान ही को 'दिव्य नेत्र' कहा गया है। ज्ञान ही ऐसा अंजन (Collyrium) है जिस से अज्ञान-अंधेरे का नाश होता है और मनुष्य को ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है जिससे कि वह इस लोक के अतिरिक्त परलोक का भी दर्शन कर लेता है। इसलिये ही तो पारमार्थिक ज्ञान को 'दर्शन' अथवा 'जीवन-दर्शन' कहा गया है। इहलौकिक विद्या से मनुष्यात्मा को जीवन-प्रकाश नहीं मिलता। सांसारिक विद्या से मनुष्य कोई भाषा, गणित आदि भले ही सीख ले परन्तु इससे वह आगे के लिए तन, धन और मन का सुख छीनने वाले मनोविकारों से मुक्त नहीं हो जाता है। परन्तु ईश्वरीय ज्ञान ही ऐसा सद्ज्ञान है जिसे जानने के बाद सुख-प्राप्ति के लिये और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता।

तीसरे नेत्र के अभाव में मनुष्य दो नेत्रों द्वारा भी कुछ विकर्म कर रहा है

यों तो संसार के प्राय: सभी लोग तीसरे नेत्र से वञ्चित हैं और हरेक नर-नारी को जो दो चर्म-चक्षु प्राप्त भी हैं, वे भी **'कमल नेत्र'** नहीं हैं क्योंकि आज कमल के समान अलिप्त तथा न्यारा भला कौन है ? 'नेत्र' जिसको एक बड़ी 'नेमत' (वरदान) कहा गया है, का मनुष्य अनेक परिस्थितियों में दुरुपयोग कर रहा है। वह किसी को तो क्रोध द्वारा आँखें लाल करके, किसी को 'काम' की वासना दृष्टि से, किसी को मोह से रंगी आँखों से, किसी को ललचाई निगाहों से और किसी को अहंकार के नशे में चूर दृष्टि से देख रहा है। सच्चे स्नेह तथा आत्मिक दृष्टि से कोई विरला योगी ही अपनी नज़र से दूसरों को निहाल करना जानता है। आत्मिक भावना से देखते हुए कृपा दृष्टि तो कोई स्वरूप-निष्ठ ही किसी पर डालता है। सच पूछिये तो नेत्रहीन व्यक्ति काम-वासना वाली दृष्टि (Criminal eye) से तो बचा ही हुआ है। इसी प्रकार बेचारा गूँगा व्यक्ति (Dumb) अपने भाव को व्यक्त नहीं कर पाता परन्तु वह भी कटु वचनों से, झूठे बोल से, निन्दा और गाली-गलौच के पाप का भागी तो नहीं बनता। आज कितने ही लोग अपने वचनों में ऐसा ज़हर उगलते, ऐसी अग्नि बरसाते अथवा ऐसी कटारी मारते हैं कि कितनों ही का 'जीवघात' करते हैं परन्तु वचनेन्द्रिय-विहीन व्यक्ति इन सब विकर्मों से तो बचा ही हुआ है। इसी प्रकार बधिर (Deaf) भी अश्लील गीत, विषय-विकारों को उकसाने वाली बातें, पतनकारी वार्तालाप आदि से तो सुरक्षित हैं। **"बुरा मत देखो, बुरा मत बोलो, बुरा मत सुनो" की जो कहावत है, उसमें तो इन तीनों को क्रमश: अपनी-अपनी कर्मेन्द्रिय की विकृति मन की विकृति से तो कुछ बचा ही रही है। हाँ, इन इन्द्रियों के अभाव या इनकी विकृति के कारण उसे कुछ दु:ख भी है।**

इनकी स्थाई सेवा

परन्तु प्रश्न तो यह है कि इन सभी का भविष्य ऊँचा कैसे हो ? उसके लिये हम इनकी क्या सेवा करें ? बहुत-से लोग मानते हैं कि किसी नेत्रहीन व्यक्ति का हाथ पकड़ कर उसे सड़क पार करा देना अथवा ठीक रास्ते पर लगा देना भी सेवा है। हाँ, है तो सही, परन्तु अब शिव बाबा ने समझाया है कि इससे भी उच्च और कल्याणप्रद सेवा तो उनको **नर से नारायण बनने की ठीक राह पर लगा देना है;** उनका हाथ पकड़ कर उन्हें अपने साथ संसार सागर से पार जाने का उपाय करना है। उन्हें गाना-बजाना सिखाना तो उनको एक विद्या अथवा कला सिखाने की कोशिश करना है परन्तु उन्हें प्रभु के गुण गाना सिखाना तो निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ है ही। इसके बिना तो यदि गीत और संगीत सीख भी लिया और यदि वह गीत पतनकारी गीत हुए तब उससे तो भविष्य उज्ज्वल बनेगा ही नहीं। अत: जो बेचारे इस जीवन में नेत्रों से अपने शरीर के माता-पिता को भी नहीं जान और पहचान पाते, उन्हें ज्ञान-नेत्र देकर आत्मा के पिता परमात्मा की पहचान देना ही उनका सही अर्थ में भला करना है। हाँ, अन्धे की लाठी ही उसका सहारा होती है, परन्तु ज्ञान-नेत्र-विहीन व्यक्ति की लाठी तो 'ज्ञान' ही है। क्या इस संसार रूप यात्रा में उसे गिरने (पतन) से बचाने के लिये यह लाठी देना ज़रूरी नहीं है ? 'श्रवण कुमार' के नाम से जो आख्यान प्रसिद्ध है, वह इसी सेवा ही का तो बोधक है। जो परमात्मा का ज्ञान सुनता (श्रवण करता) है, वही सही अर्थ में 'श्रवण कुमार' है। नेत्र से वञ्चित जन-जन को ज्ञान और योग-तुला में बिठाकर, उन्हें अपना कन्धा देकर यह सच्ची यात्रा कराना ही इस अर्थ में श्रवण कुमार बनना है। 'यात्रा' शब्द 'या' (जो) और 'त्रा' (त्राण)

शब्द को जोड़ने से बना है। जिससे आत्मा इस संसार से तर जाये और दुःख तथा अशान्ति से उसे त्राण मिल जाये, वही वास्तव में 'यात्रा' है। ऐसा साधन तो ईश्वरीय ज्ञान तथा योग ही है। इन दोनों पलड़ों से बनी तुला में बिठा कर, सहयोग रूपी कन्धा देकर नेत्रहीनों की सेवा करना ही सच्चा श्रवण कुमार बनना है। इसी सेवा के लिए ही अब हम उपस्थित हैं।

नेत्र होते हुए भी नेत्रहीन, श्रोत्र होते हुए भी बधिर

संसार में कई लोग नेत्र होते हुए नेत्रहीन, कान होते हुए भी श्रोत्रहीन तथा मुख होते हुए भी वचनेन्द्रिय-विहीन होते हैं। वे ऐसे लोग हैं जो देखते हुए भी नहीं देखते और कान होते हुए भी नहीं सुनते। उदाहरण के तौर पर, आज संसार में महा-विनाश के लिए तैयार हुआ एटम तथा हाइड्रोजन बमों को देखकर भी कई लोग आने वाले विनाश को नहीं देखते। वे भगवान द्वारा हो रहे ईश्वरीय कार्य के फल को देखकर भी भगवान को नहीं देख पाते। इसी प्रकार ईश्वर के गीता-ज्ञान को सुनते हुए भी कई उसे नहीं सुनते। उन्हें प्रतिदिन कहा जाता है कि "काम, क्रोध और लोभ नरक के द्वार हैं", परन्तु वे सुनते हुए भी गोया उसे नहीं सुनते। ऐसे ही जब हम कई लोगों को प्रभु का परिचय देते हैं तो वे उसे सुन कर भी दूसरों को ज्ञान के वचनों द्वार उसका लाभ नहीं देते। वे अपने मुख से प्रभु की महिमा का वर्णन नहीं करते; उसके गुण नहीं गाते। गोया वे वचनेन्द्रिय होते हुए भी गूँगे हैं। अतः जब संसार में कोई विरला ही सत्य के दर्शन करने वाला निकलता है तब इस अर्थ में तो आज का यह संसार एक अन्धनगरी ही है।

परमात्मा द्वारा दिव्य वरदान

अब परमपिता आये हैं, सभी को ज्ञान-नेत्र देकर अन्धों को सनेत्र बनाने। ऐसा 'नेत्र-दान' करने वाले एक परमात्मा ही हैं। इससे मनुष्य के चर्म चक्षु भी 'कमल-नेत्र' हो जाते हैं। सूरदास ने भी एक गीत में प्रभु से यही विनय की है कि—"नयनहीन को राह दिखाओ प्रभु, दर-दर ठोकर खाऊँ मैं…।" अतः अब जबकि प्रभु ज्ञान-नयन-हीन आत्माओं को सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिए ठोकरें खाने से बचाने आये हैं तथा राह दिखा रहे हैं तब चर्म-चक्षु-हीन भाइयों और बहनों को तो यह राह अवश्य दिखानी ही चाहिये। जिनके बारे में कहा गया है कि 'आँख गयी तो जहान गया', उन्हें सतयुगी स्वर्गिक सुखों के जहान में राज्य-भाग्य प्राप्त करने की राह बतानी चाहिए। परमात्मा के ज्ञान के बारे में कहा भी गया है कि "उसकी कृपा से अन्धा भी देखने लगता है, बहिरा सुनने लगता है, गूँगा बोलने लगता है और लँगड़ा पहाड़ को भी पार कर लेता है।" वास्तव में काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को जीतना ऐसा ही है जैसे कि लँगड़े के लिए पहाड़ को पार करना। इसी प्रकार, प्रकृति के पदार्थों से भिन्न, दिव्य प्रकाशमय सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा को देखना ऐसा ही कठिन है जैसे कि अन्धे के लिए किसी अणु को देखना और परमात्मा, जिसका मनुष्य को रंच भी सत्य ज्ञान नहीं है, की सही महिमा का बखान करना भी ऐसे ही है जैसे कि गूँगे के लिए बोलना। इसलिए, ईश्वरीय आनन्द को 'गूँगे का गुड़' कहा जाता है। परन्तु जब परमपिता परमात्मा स्वयं ज्ञान रूप शक्ति का वरदान मनुष्यात्माओं को देते हैं तब अन्धे, बहिरे, गूँगे, लंगड़े, अपाहिज सभी में शक्ति आ जाती है जिससे कि वह आशातीत दिव्य कार्य को कर लेता है।

अब वही ईश्वरीय ज्ञान जो परमपिता परमात्मा ने सभी मनुष्यात्मा रूपी पुत्रों के लिए भेंट रूप दिया है, उसी भेंट को हम सभी को देना चाहते हैं। जो भाई और बहनें शारीरिक रूप से भी विकलांग हैं, उनके लिए तो दयालु परमात्मा का यह विशेष वरदान है।

शरीर में अष्टावक्र के समान वक्र हों तो क्या हुआ?
ईश्वरीय ज्ञान सब सिद्धियों को देने वाला

अष्टावक्र की कथा प्रसिद्ध है। शारीरिक तौर पर वक्र होते हुए भी आध्यात्मिक ज्ञान में उसका अधिकार था। इसी प्रकार, शारीरिक रूप से कोई वंचित भी हो तो वह अब ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करके अपने पुरुषार्थ से राजा जनक के समान राजाओं के मान्य हो सकता है। ईश्वरीय ज्ञान तो हमें देह भावना से ऊपर उठाकर 'विदेह' बनाता है। अतः शारीरिक क्षति भी हुई हो तो वह क्षति ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त कर परम आनन्द प्राप्त करने के मार्ग में अनुल्लंघनीय बाधा नहीं हो सकती। शिव की बारात के जो चित्र बने होते हैं, उन में तो अंग-भंग, अपंग

और विकलांग भी दिखाये ही होते हैं।

शिव बाबा तो कहते हैं कि—**अब सारी सृष्टि वास्तव में रोगी है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, आलस्य इत्यादि रोग चिरकाल से आत्मा को पीड़ित कर रहे हैं। अतः आत्मा स्वयं भी विक्षिप्त रोगी, अपंग एवं विकलांग है। जब किसी मनुष्य को क्रोध आता है, वह अन्धा तो हो ही जाता है। वह आवेश में किसी को छुरे से मार देता है; उसका खतरनाक परिणाम उसे दिखाई नहीं देता। जब मनुष्य पर 'काम' विकार रूपी भूत सवार होता है तो वह ऐसा निर्लज्ज होकर कर्म कर डालता है कि उसे यह दिखाई नहीं देता कि इससे कुल की लाज भी जायेगी और दण्ड भी भोगना पड़ेगा।** काम, क्रोध, लोभ रूपी रोग से मनुष्य केवल अन्धा नहीं बल्कि बहरा भी हो जाता है क्योंकि वह अपने मित्रजनों की सम्मति की ओर जरा भी ध्यान नहीं देता। विकारी मनुष्य को आप सत्संग के स्थान पर आने के लिए निमन्त्रण दें तो वह वहाँ भी नहीं आता; गोया वहाँ आने के लिए वह अपाहिज है। अब शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार से विकलांगी लोगों की ईश्वरीय सेवा के लिए परमपिता परमात्मा ने आदेश दिया है। परमात्मा आत्मा रूप सन्तति का दुःख निवारण करने के लिए ही तत्पर हैं। जो ईश्वरीय सेवा-केन्द्रों पर आ सकते हैं, उनका स्वागत है, जो किसी शारीरिक बाधा के कारण नहीं आ सकते, उनकी सेवा के लिए हम उनके पास भी जाने को तैयार हैं। परमात्मा द्वारा सिखाया गया ईश्वरीय ज्ञान और राजयोग तो इतना सहज है कि बिस्तरे पर लेटा हुआ रोगी भी उसे ग्रहण कर तथा उसका अभ्यास कर उससे अपने जीवन को महान् तथा सुख-शान्ति सम्पन्न बना सकता है।

कैदियों की आध्यात्मिक सेवा

शारीरिक कठिनाइयों के कारण से ईश्वरीय सेवा-केन्द्रों पर न आ सकने वालों की तरह कैदियों की भी अपने प्रकार की कठिनाइयाँ हैं। वह तो कैद-खाने की चारदीवारी में बन्द हैं; उन्हें तो बाहर जाने ही कोई नहीं देगा। परन्तु क्या वे आध्यात्मिक लाभ से वंचित रह जायेंगे? क्या उन्हें परमपिता का संदेश और उस द्वारा दिया गया ज्ञान रूप अमृत नहीं मिलेगा? वे भी तो ईश्वरीय पैत्रिक सम्पत्ति के अधिकारी हैं क्योंकि सभी आत्मायें परमात्मा के पुत्र होने के नाते परमात्मा से पवित्रता, सुख तथा शान्ति रूपी जन्म-सिद्ध अधिकार के अधिकारी तो हैं ही।

यों तो कलियुग का यह सारा संसार ही एक जेलखाना है। सभी आत्मायें यहाँ अपने कर्मों का दण्ड किसी-न-किसी रूप में पा रही हैं। ये कारावास, गर्भ-जेल रूपी कैदखाने से शुरू होता है और अन्त में मृत्यु दण्ड के रूप में अन्त होता है। इससे राजा-रंक, धनी-निर्धन, जेलर-कैदी कोई भी तो नहीं छूटा। अब परमपिता परमात्मा तो हमें इस विशाल जेल से छुड़ाने आये हैं। इस जेल से मुक्त होने का तरीका अपने किये कर्मों से योग द्वारा मुक्ति प्राप्त करना है। जेल में भी यदि किसी कैदी का व्यवहार और आचार अच्छा होता जाता है तो उसके दण्ड में कमी कर दी जाती है। अब हम भी अपने जीवन को श्रेष्ठ बना कर इस कलियुगी संसार में जो हमें आयु-भर प्रथम-श्रेणी, द्वितीय श्रेणी या सामान्य-श्रेणी की या सख्त कैद (Rigorous imprisonment) मिली हुई है, उसे न केवल हल्का (सूली से काँटा) करा सकते हैं बल्कि भविष्य में सदा के लिए मुक्ति तथा जीवन-मुक्ति की प्राप्ति करा सकते हैं।

हरिजनों की सेवा

यों तो सभी आत्मायें परमात्मा की सन्तति अथवा प्रजा होने के नाते हरि के ही जन हैं, परन्तु आज लोग जिन्हें नाम 'हरिजन' देते हैं, उनके बारे में वे वैसी भावना नहीं रखते बल्कि उन्हें द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी का नागरिक मानते हैं। आज हर आये दिन हम समाचार-पत्रों में हरिजनों पर 'सुवर्णों' के अत्याचार के समाचार पढ़ते रहते हैं।

वास्तव में 'सुवर्ण' तो वह है जिसके आत्मन् पर अच्छा 'वर्ण' अर्थात् रंग लगा हो, अर्थात सत्संग का रंग या अच्छे कर्मों का रंग चढ़ा हो। किसी का वर्ण उसके जन्म के आधार पर भला हम कैसे मान सकते हैं? क्या आज हम यह नहीं देखते कि एक तथा-कथित 'ब्राह्मण' का पुत्र चोर और झगड़ालू भी होता है और वासना तथा भोगों की नाली में गिरा हुआ भी होता है? क्या हम नहीं देखते कि एक व्यापारी या 'वैश्य' का लड़का, शराब, वेश्यावृत्ति, अशुचि, दुर्व्यवहार और दुराचार में फँसा भी होता है? फिर हम यह भी देखते हैं कि किसी आध्यापक का बच्चा परीक्षा में फ़ेल भी होता है और किसी सैनिक

का लाडला डरपोक भी होता है। अतः वास्तव में गुणों ही के आधार पर मनुष्यात्माओं की श्रेणी या वर्ण बन सकते हैं। गीता में भी भगवान् के महा-वाक्य हैं कि—"मैंने गुण और कर्म ही के आधार पर चार वर्णों की रचना की।"[1] परन्तु आगे चल कर मनुष्यों ने उसे जन्म के आधार पर मानना शुरू कर दिया और छोटे व्यवसाय करने वाले को 'अछूत' कहना शुरू किया तथा उनसे घृणा करना शुरू कर दिया। इससे न केवल समाज में एकता न रही और न केवल परस्पर सद्भावना जाती रही बल्कि मनुष्य नैतिकता से भी गिरने लगा। उसमें घृणादि दोष बढ़ने लगे और घृणा के कारण वह अत्याचार भी करने लगा। जो व्यक्ति समाज की सेवा करते हैं, देश में स्वच्छता रख कर हमारे जीवन को गन्दगी से होने वाले रोगों से बचाने के निमित्त बनते हैं, उनके प्रति आभारी महसूस करने तथा उनके प्रति सहानुभूति होने की बजाय घृणा का होना तो अन्याय और अनैतिकता ही है।

हां, यह ठीक है कि यदि किसी व्यक्ति का तन और उसके वस्त्र गन्दगी लिए हुए हैं तो हमें उससे स्वयं को गन्दा नहीं करना है। परन्तु इसमें घृणा की तो बात ही नहीं है। यदि हमारे घर में भी शौचालय से हो आने के बाद किसी व्यक्ति ने स्नान नहीं किया है या वस्त्र नहीं बदले हैं तो उस समय वह भी अस्वच्छ ही है परन्तु स्नानादि के बाद जैसे वह स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार कथित 'हरिजन' भी अपना-अपना व्यावसायिक कार्य करने के बाद स्वच्छ हो सकता है। तब भला अस्पृश्यता की क्या बात है ? स्वच्छता होने पर उन्हें मन्दिर में न आने देने पर आपत्ति क्यों है ?

सच्चे अर्थ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कौन हैं ?

वास्तव में परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा जो ईश्वरीय ज्ञान दिया है, उसके अनुसार तो वर्ण-व्यवस्था की व्याख्या प्रचलित मान्यता से बिल्कुल ही भिन्न है। उसके अनुसार जो मनुष्यात्मा **प्रजापिता ब्रह्मा के मुख द्वारा दिये गये ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों से तथा मांसाहार, मद्यपान आदि अशुद्ध भोजन से तथा कुसंग और अश्लील साहित्य से बचकर रहता है वही सही अर्थ में 'ब्राह्मण' है।** जो काम, क्रोधादि विकारों पर विजयी नहीं हुआ परन्तु उनसे युद्ध करता है, वही **क्षत्रिय है।** जो भगवान के साथ भी सौदाबाजी करता है, उस पर चढ़ावा-चढ़ाकर, उससे किसी आर्थिक लाभ की अपेक्षा करता है, वही **'वैश्य'** है और जो व्यक्ति काम, क्रोध आदि विकारों तथा अशुद्ध आहार, कुसंग तथा बुरी आदतों में जकड़ा हुआ है, वही वास्तव में शूद्र है। इस दृष्टि से देखा जाय तो कलियुग शूद्रकाल है। इसमें तो चारों वर्णों से एक ही वर्ण शेष रह जाता है। इसी को ही आसुरी सम्पदा से युक्त लोगों का युग कहा जा सकता है। यही धर्म-ग्लानि का समय है। जब भारत देश में ऐसी धर्म-ग्लानि हो जाती है और सभी आचार-भ्रष्ट हो जाते हैं तब परमपिता परमात्मा शिव पुनः प्रजापिता ब्रह्मा के तन में अवतरित होकर गीता-ज्ञान और सहज राजयोग सिखा कर मनुष्यों के गुण और कर्म श्रेष्ठ बनाते हैं। जो इस द्वारा मन, वचन और कर्म से पवित्र बनते हैं उन्हें चाहे लोग 'हरिजन' कहते हों या 'दलित वर्ग' या वे उन्हें 'पिछड़ी जातियाँ' या 'अनुसूचित श्रेणियाँ' की संज्ञा देते हों, वे सही अर्थ में 'ब्राह्मण' बन जाते हैं। अब वही ईश्वरीय कार्य पुनरावृत्त हो रहा है। उससे इस संसार में मनुष्यों द्वारा बनाई गई जात पात, वर्ण या जाति के भेद के बिना कोई भी लाभ ले सकता है।

शूद्र वह है जो क्षुद्र कर्म करता है

'शूद्र' शब्द को 'क्षुद्र' का पर्यायवाची माना जा सकता है। क्षुद्र तो वही है जो पाप करता है। सेवा करने वाला 'क्षुद्र' कैसे हो सकता है ? अतः यदि कोई पाप करते हुए भी स्वयं को सुवर्ण माने हुए हो तो यह उसकी महान भूल है। परमपिता परमात्मा शिव ने तो बताया है कि यदि कोई मनुष्य **'कामी'** है, वेश्या-वृत्ति वाला है या भोग-लिप्सा वाला है तो उससे तो **'मेहतर भी बेहतर'** है, अर्थात गाँव में घरों से गन्दगी उठाने वाला उससे अच्छा है क्योंकि वह तो सिर पर गन्दगी उठाता है जबकि यह गन्दगी को भोगता है। इस बात को समझ कर आज हरेक मनुष्य को अपने मन में इस बात को महसूस करना चाहिए कि

---
१. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्ट्वा गुणकर्म विभागशः —गीता ४/१३

वास्तव में मैं सुवर्ण नहीं हूँ बल्कि अपवित्र हूँ, पतित हूँ और नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से शूद्र (क्षुद्र) हूँ; अब मुझे स्वयं में गुण धारण कर, कामादि विकारों को छोड़, सुवर्ण या ब्राह्मण बनने का पुरुषार्थ करना है। कथित हरिजनों के प्रति घृणा करने की बजाय उसे अपने मन में बैठे विकारों से घृणा करनी चाहिए **क्योंकि वास्तव में आत्मा के लिए ये विकार ही अस्पृश्य (untouchable) हैं।**

संस्कार-परिवर्तन ही 'हरिजनों' की सच्ची सेवा

आज राजनीतिक लोग 'हरिजनों की सेवा', उनके लिए सहूलियतें, उनके लिए स्थानों एवं नौकरियों के सुरक्षण की घोषणा करके उनसे मत (Votes) प्राप्त करने की अपेक्षा करते हैं और फिर वे स्थायी रूप से उनकी अलग श्रेणी बनाये रखते हैं। परन्तु परमपिता परमात्मा शिव के ज्ञान से तो मनुष्य को आत्मिक दृष्टि मिलती है जिससे वह शूद्र को भी अपने आत्मिक भाई ही की दृष्टि से देखता है। इस दृष्टि से ही वास्तव में भेदभाव और घृणा का अन्त हो सकता है।

पुनश्च, हरिजनों का भी वास्तविक कल्याण तो अन्य लोगों को सुधारने के समान उनके भी संस्कार-परिवर्तन से हो सकता है। आज कई धार्मिक संस्थायें अन्य धर्म वालों को अपने धर्म में लाने की रस्म को शुद्धि कहती हैं। मुसलमान लोग भी इस प्रकार का जो कार्य करते हैं, उसे वे 'तबलीख़' कहते हैं। ईसाई उसे 'प्रोज़लीटाइज़ेशन (Proselytisation) नाम देते हैं। परन्तु वास्तव में 'धर्म' का अर्थ धारणा है और दिव्य गुणों की धारणा तथा संस्कारों की पवित्रता ही शुद्धि है। हवन कर के चोटी और जनेऊ धारण करने मात्र से शुद्धि नहीं हो जाती। 'शुद्धि' तो ईश्वरीय ज्ञान और योग द्वारा ही होती है। इसी प्रकार, धर्म बदलने की कल्याणकारी क्रिया किसी को 'मुसलमान', 'ईसाई' या अन्य मतावलम्बी बनाना नहीं है बल्कि शूद्र (क्षुद्र; विकारी) से देवता (दिव्य, पवित्र) बनाना ही है। उसके बुरे संस्कारों का होम कराना ही उसे सही अर्थ में 'आर्य' बनाना अथवा उसकी 'शुद्धि' करना है। सभी मत हरिजनों को यह कह कर कि उनके मत (धर्म) में ज़ात-पात का भेदभाव नहीं हैं, अपने-अपने 'धर्म' में ले आते हैं और उन्हें दूसरा लेबल लगा देते हैं परन्तु वास्तव में तो संस्कारों की शुद्धि करना ही धर्म स्थित करना है। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय मनुष्यात्मा को 'पवित्रता' तथा 'दिव्यता' रूपी स्वधर्म में स्थित करने तथा क्षुद्रता को छोड़कर श्रेष्ठता को अपनाने की विद्या पढ़ाने के कर्त्तव्य में लगा हुआ है और इसी उद्देश्य से ही वह 'हरिजनों' की भी ईश्वरीय सेवा करता है। वह मनुष्य को देवता बनाने की सेवा करता है।

पृष्ठ ३० का शेष

इस सम्पूर्ण सृष्टि पर एक आत्मा है भगवान।
अनेक नहीं, भगवान एक है; ईश्वर अल्ला उसके नाम ॥
निराकार है, ज्योति बिन्दु है, हम बन्दे उसकी संतान।
वह न जन्मता, वह न मरता, नहीं सर्व व्यापी भगवान ॥
काम क्रोध से मुक्ति होवे, जाग उठे आत्मा का भाव।
निश्चय ही उस भाव व मुख से स्वयं बोलते हैं भगवान
कर्म हमारे योग युक्त हों, सिखा रहे हैं शिव भगवान।
समय आ गया है पृथ्वी पर, शीघ्र बनेगा स्वर्ग महान।
परमपिता आया है मिलने, छोड़ो अब इस देह के भान ॥
कलियुग अन्त में ज्ञान की गीता प्रवचन करते हैं भगवान।
राजयोग समझाने का, कृष्ण को पड़ता कभी न काम ॥
गीता का उद्धार करो तो, पावनता की चमके शान।
श्रीकृष्ण थे देवमहान पर भूल से समझ लिया भगवान।

सिनेमा घर केवल मनोरंजन-स्थान नहीं हैं वे या तो शिक्षा-स्थल या पतनालय हैं

सिनेमा के बारे में दो बातें हमें विशेष तौर पर स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहियें। एक तो यह कि सिनेमा केवल मनोरंजन ही का साधन नहीं है बल्कि मनोरंजन के साथ-साथ वह शिक्षा का भी एक माध्यम है। इतना ही नहीं, **वह हमारे संस्कारों को बिगाड़ने या बनाने का एक भी महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली साधन है।** अतः सिनेमाघरों को हमें केवल एक मनोरंजन-स्थान के रूप में ही नहीं देखना चाहिए बल्कि वे स्कूलों और कालेजों से भी अधिक प्रभावशाली शिक्षा स्थान समझें जाने चाहियें। परन्तु आज जिस प्रकार के संस्कार फ़िल्म के माध्यम से जन-मानस पर डाले जा रहे हैं, वे निस्सन्देह मीठे विष की तरह तत्काल मन को प्रिय लगने वाले परन्तु अन्ततोगत्वा मनुष्य की नैतिक हत्या करने वाले हैं।

बुज़ुर्ग लोग बताते हैं कि एक ज़माना था कि अपने शरीर का प्रदर्शन करने वाली तथा नाच और गानों पर युवकों को आकर्षित करके उनके पतन की निमित्त बनने वाली गणिकाओं एवं वेश्याओं के स्थान निश्चित थे और उनकी ओर जाने में किसी भी कुलीन, सुशिक्षित एवं सभ्य व्यक्ति को लज्जा का अनुभव होता था और लोग भी ऐसे स्थानों पर जाने वाले व्यक्ति को चरित्रवान नहीं मानते थे परन्तु दिनों का फेर है कि हवा का रुख़ बदल गया है। आज उन लोगों को उच्च स्तर का नहीं माना जाता जो महीने में एक-आध बार भी फ़िल्म नहीं देखते। जैसे कि इस लेख में पहले कहा जा चुका है, आज वही दृश्य माता-पिता, बहू-बेटा, पुत्र-पुत्री, इकट्ठे बैठकर खुले-आम देखते हैं और देखते समय अथवा बाद में परस्पर उसकी समालोचना भी करते हैं जिनकी चर्चा पहले कोई भी नवयुवक माता-पिता के सामने करने की हिम्मत ही नहीं कर सकता था। आज यही बात हमारे देश की गिरावट का एक बहुत बड़ा कारण है। इसी ही का परिणाम है कि आज नारियों से छेड़छाड़ (Eve-teasing), भरी हुई बसों और गाड़ियों में कन्याओं-माताओं पर अभद्र अट्टहास तथा प्रतिदिन अपहरण और बलात्कार की वारदातें सुनने और देखने को मिलती हैं क्योंकि जब मां-बाप और घर वालों के सामने से ही लज्जा का पर्दा उठ गया तो बाहर वालों के सामने संकोच की बात ही कहाँ रह गई! आज मनुष्य भोग-वासना का दीवाना-सा हुआ-हुआ है और अपने घर के बुज़ुर्गों के सामने भी न उसे अश्लील फ़िल्मी गीत गाने में संकोच है और न दोस्तों से फ़िल्मी नायिकाओं और नायकों के अभद्र हाव-भाव की चर्चा करने में उसे कोई अंकुश अनुभव होता है। आज तो कौरव सभा की तरह के दृश्य जहाँ-तहाँ देखने को मिलते हैं जहाँ वृद्ध जन, शिक्षक आदि भी मूक हो कर चीर-हरण या लज्जा के दृश्य देखते रहते हैं! शायद हमारी इस स्पष्टवादिता को कुछ लोग बुरा मनायेंगे परन्तु सत्य फिर भी सत्य ही है और वह यह कि **आज के सिनेमा पाप के घर हैं। वे ऐसे स्थान हैं जहां से मनुष्य प्रायः वेश्यावृत्ति, हिंसा, चोरी, डकैती, धूम्रपान, शराब, माँसाहार, रिश्वत के तरीके, फ़रेब आदि-आदि अनेक बुराईयां सीख कर आता है। अच्छी फ़िल्में तो अपवाद (Exception) मात्र ही होंगी।**

शुरू-शुरू में ऐसी फ़िल्में बनाई गईं कि जिससे लोगों को यह निश्चय हुआ कि फ़िल्म देखने में कोई हानि नहीं परन्तु जब एक बार लोगों को फ़िल्म देखने की आदत-सी हो गई तो अब ऐसी फ़िल्में बनने लगी हैं कि जिनसे देशवासियों के चरित्र का पतन हो रहा है। प्रारम्भ में फ़िल्म की अभिनेत्री बनना ही किसी कुलीन नारी को पसन्द नहीं था, न ही लोग अदाकारों और अभिनेत्रियों को चरित्रवान समझते थे और आज यह हालत है कि लोग घरों और गाड़ियों में फ़िल्मी पत्रिका ही पढ़ते दिखाई देते हैं, मित्रों और दोस्तों में फ़िल्मी अभिनेताओं की ही चर्चा करते हैं और घरों में फ़िल्मी अभिनेत्रियों ही के चित्र और कैलेन्डर लगाते हैं। यदि उनके नगर में कोई फ़िल्मी अभिनेत्री आ जाती है तो वे उसे देखने के लिए भारी

संख्या में इकट्ठे होते हैं और टिकट खरीद कर, धक्का-पेल बर्दाश्त करते हुए भी उन्हें देखने के लिए हज़ार यत्न करते हैं। गोया अभिनेता और अभिनेत्री ही उनके जीवन के इष्ट देवता व इष्ट देवी बन चुके हैं। आज युवकों ओर युवतियों को श्री कृष्ण और श्री राम के बारे में पता नहीं होगा परन्तु फ़िल्मी अभिनेत्रियों और अभिनेताओं के बारे में पता है। आज हालत यह है कि सड़कों पर, चौराहों पर, पान वालों की दुकानों पर होटलों में, रेडियो पर, शादी-विवाह के मौके पर घर में स्टीरियो (Stereo) या ट्राज़िस्टर पर फ़िल्मी ही गीत सुनाई देते हैं जो प्राय: कामोत्पादक या निर्लज्जता को लिये होते हैं। जिन गीतों को पहले कुछ बदनाम लोग भी खुले आम गाने में शर्म महसूस करते थे, आज वे हर मौके पर, हर स्थान पर निस्संकोच बजाये जाते हैं ! आज देश में इतने सिनेमाघर हैं, इतनी फ़िल्मी पत्रिकायें हैं, हर अख़बार में सिनेमाघर के इतने विज्ञापन हैं, हर चौराहे पर लगे हुए उनके बड़े-बड़े बोर्ड (Hoardings) हैं, हर सप्ताह टी०वी० पर ऐसी फ़िल्में दिखाई जाती हैं, हर रेडियो स्टेशन से दिन-भर में उनके इतने फ़रमाइशी गीत बजते हैं कि तोबा ही भली। सारे वातावरण में सिनेमा का ऐसा प्रदूषण है कि दम घुटता है। किसी ओर से भी मनुष्य के इन से पूरी तरह बच निकलने का साधन नहीं। सारे शहर पर इसका धावा है। आश्चर्य है कि प्राय: सभी ने इसके आगे हथियार डाल दिये हैं और आत्म-समर्पण कर दिया है !

सरकार भी लाचार

सरकार को तो मनोरंजन-कर (Entertainment Tax) से तथा अन्य प्रकार के करों (Taxes) आदि के रूप में काफ़ी आमदनी होती है और वह स्वयं भी तो जनता ही में से चुनी हुई है। अत: वह इस विषय में कुछ भी नहीं कर पा रही है। सरकार की ओर से सेंसर बोर्ड (Censor Board) बने हुए हैं, वे कुछेक दृश्य कभी-कभी फ़िल्मों में से निकलवा भी देते है परन्तु इस से बढ़ कर वे भी कुछ नहीं कर सकते। फ़िल्म वालों से, फ़िल्म घर के मालिकों से राजनीतिक नेताओं को भी तो अपने चुनावों में सहायता ही मिलती होगी; अत: वे भी इस के प्रति कोई ज़ोरदार कार्यवाही नहीं कर सकते। सेंसर बोर्ड कामोत्तेजक फ़िल्मों को भी 'A' निशान देकर अथवा For Adults only केवल बालिग़ों के लिये—पारित करके अभद्रता के प्रचार की छूट देती है। वरना सोचने की बात है कि बालिग़ व्यक्ति भी तो एक मानव ही है, उसके लिए क्या ऐसी फ़िल्में नैतिक दृष्टिकोण से हानिकर नहीं हैं ?

यदि फ़िल्म प्रोड्यूसरों तथा निर्देशकों से कहा जाय कि वे ऐसी फ़िल्में बनाना बन्द करें तो वे कहते हैं कि "जब जनता ही ऐसी फ़िल्में पसन्द करती है तो हम क्या करें ?" उनका कथन है कि आज एक फ़िल्म बनाने पर बहुत ही अधिक ख़र्च आता है और यदि लोग अधिक संख्या में उसे न देखें तो उनका सारा धन ही डूब जायेगा। इस प्रकार, उन्हें तो अपनी कमाई में दिलचस्पी है, देशवासियों के चरित्र की लुटिया डूबती है तो इस से उनका कोई वास्ता नहीं।

आखिर क्या हो ?

ऐसी स्थिति में अच्छा तो यही है कि सरकार फ़िल्म उद्योग का राष्ट्रीकरण (Nationalisation) कर ले और वह चरित्र-भ्रष्टता की इस बाढ़ को रोके परन्तु समय की गति और मानव की मति और धर्म की क्षति ही ऐसी है कि यदि वह भी इसे अपने हाथ में ले ले तो सरकारी कार्यकर्ता भी शायद ही इस कुरीति को छोड़ेंगें।

बस, केवल धार्मिक, आध्यात्मिक या नैतिक संस्थायें ही ऐसी हैं जो इस के प्रति कुछ कदम उठा सकती हैं परन्तु आज उनमें भी प्राय: झगड़े-बाज़ी, फूट, मान-प्रतिष्ठा की भूख और पदलोलुप्ता है। आज जहाँ संगठन न हो वहाँ भला क्या सफलता हो सकती है ? फिर, आज नियमों, मर्यादाओं तथा पवित्रता के व्रतों का पालन कहाँ है और उन पर कौन इतनी दृढ़ता से ज़ोर देता है ? धार्मिक संस्थाओं में जाने वाले भी तो बहुत लोग सिनेमा देखते हैं। तो भी यदि कहीं से आशा हो सकती है तो धर्म-प्रिय लोगों से तथा ऐसी संस्थाओं ही से हो सकती है जो धर्म के कार्यों में लगी हैं। फ़िल्म-निर्माताओं में से भी शायद कुछ ऐसे निकल सकेंगें जिनकी अन्तरात्मा को प्रेरित किया जा सकता है। अत: प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय ऐसे फ़िल्म-निर्माताओं तथा धार्मिक संस्थाओं से यह निवेदन करता है कि कम-से-कम वे तो राष्ट्र-हित

की बात सोचें। वरना एक ओर जन-जन को सत्संग के लिए कहना और दूसरी ओर कुसंग के इस ज़ोरदार साधन में वृद्धि करना गोया मनुष्य को स्वर्ग की बजाय नरक ही का जीव बनाये रखना है।

सिनेमा से होने वाली शारीरिक हानियाँ

सिनेमा के प्रभाव से नैतिक पतन तो हो ही रहा है परन्तु बहुत लोगों को यह मालूम नहीं है कि इसका शरीर पर भी अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। आज मनोवैज्ञानिक तथा शरीर-विज्ञान-वेत्ता इस बात को मानते हैं कि मनुष्य के विचारों का भी उसके शरीर पर बहुत प्रभाद पड़ता है। उन्होंने देखा है कि बहुत से रोग मनुष्य की चेतना में विकृतियों के कारण से होते हैं, अर्थात् उसके मन में हानिकारक विचारों का, परिणाम होते हैं। विशेषकर आवेगों (Emotions) का प्रभाव शरीर पर बहुत गहरा होता है। मानसिक तनाव के बारे में जो छानबीन हुई है, उससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि उससे दमा, अल्सर (Ulcer), रक्त चाप में वृद्धि आदि कई रोग होते हैं। शरीर-विज्ञान-वेत्ताओं ने देखा है कि मानव-शरीर में जो अन्तः स्रावी ग्रंथियां (Glands) हैं, उनका स्राव (Secretion) सीधे ही रक्त में जा मिलता है। हमारे विचारों तथा आवेगों का प्रभाव हमारे मस्तिष्क अधश्चेतक (Hypothalamus) पर पड़ता है और उस से वह प्रभाव हमारे अन्तः स्रावी ग्रंथियों पर होता है और हमारे दूषित विचारों एवं आवेगों का प्रभाव पड़ने से जो विषैले स्राव निकलते हैं, वे हमारे रक्त में मिल कर रोग उत्पन्न करते हैं।

अब कुछ वैज्ञानिकों ने टी०वी (T.V.) तथा सिनेमा देखने वालों पर जो प्रयोग किये हैं उस से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इस में कई ऐसे दृश्य होते ही हैं जिनसे मनुष्य में भय, आवेश, सहानुभूति आदि का उद्रेक होता है। जैसा दृश्य हो वह सम्बन्धित मनोभाव तथा आवेग पैदा करता ही है। उस से दर्शक के हृदय की गति पर, उसकी श्वास-क्रिया पर तथा उसके रक्त चाप आदि पर भी प्रभाव पड़ता है। अतः यदि फ़िल्म में हिंसा, उत्तेजना आदि के दृश्य हो तो वे निश्चय ही मनुष्य के शरीर पर भी धीरे-धीरे हानिकारक सिद्ध होते हैं।

सिनेमा द्वारा सबसे बड़ा प्रदूषण

यों देखा जाय तो प्रायः देश की सरकार ने पर्यावरण-प्रदूषण की रोक-थाम के लिये वैज्ञानिक और संस्थान नियुक्त किये हुए हैं। परन्तु सिनेमा की फ़िल्मों से होने वाला मानसिक प्रदूषण तो उन सबसे बड़ा प्रदूषण है। उसकी रोक-थाम के लिये भी तो सरकार को कुछ करना चाहिये।

अच्छी फिल्में

आज केवल फिल्में ही चरित्र भ्रष्ट करने वाली नहीं हैं बल्कि फिल्मी पत्रिकाएं भी देश वासियों के चरित्र पर बहुत आघात पहुँचा रही हैं। धार्मिक संस्थाओं को चाहिये कि वे आगे आयें। वे धार्मिक विषयों पर फिल्में बनायें जिससे मनुष्य के चरित्र का निर्माण हो और उस परम पिता परमात्मा की स्मृति में स्थित हों ताकि उसे शान्ति और आनन्द की अनुभूति हो। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय ने 'राज योग' आदि पर ऐसी फिल्में बनवाई हैं, भारत के कल्याण की ओर ठोस कदम उठा रहा है।

पीना बुरा शराब का

आज संसार में मनुष्य के खाने-पीने के लिए अनेकानेक पदार्थ हैं। स्वास्थ्यप्रद, स्वादिष्ट और सन्तुलित खाद्य पदार्थों की कोई कमी नहीं। परन्तु फिर भी मनुष्य कुछ ऐसे पदार्थों का सेवन कर लेता है जो उसके शरीर, मस्तिष्क तथा उसकी नैतिकता के लिए हानिकारक हैं। उनमें मद्यपान मुख्य है।

हाय रे 'मित्रों' का दबाव !

मद्यपान का प्रारम्भ लोग अलग-अलग कारणों से करते हैं। कुछ लोग तो किन्हीं उत्सवों अथवा अवसरों पर अपने मित्रों और सम्बन्धियों के दबाव डालने से ही इसे पहली बार 'पीना' शुरू करते हैं। उनके दोस्त उनसे कहते हैं—"आज तो हमारे यहाँ यह खुशी का मौका है, आज तो तुम्हें पीना ही पड़ेगा। अरे भाई, वाह, तुम मना करते हो? क्या तुम्हें सोसायटी में मिल बैठना नहीं आता? तुम सबके साथ शामिल होना भी नहीं जानते? तुम नहीं पियोगे तो हम तुम्हारे घर कभी नहीं आयेंगे…!"

तब वह बेचारा कहता है—"भाई मुझे छोड़ दो; मैं और सब चीज़ खा लूंगा लेकिन इसके लिए मुझे मजबूर न करो! अगर मेरे घर वालों को मालूम हो गया कि मैं शराब पीने लगा हूँ तो मेरे लिए मुश्किल हो जाएगी। शराब को रहने दो; यह कोई अच्छी चीज़ थोड़े ही है कि इसके लिए मजबूर करते हो। कोई और चीज़ खा लूंगा; मैं खाने के लिए थोड़े ही मना कर रहा हूँ…।"

इस पर उसके दोस्त तपाक से कहते हैं—"तो तुम्हारा मतलब है कि शराब बुरी चीज़ है? गोया हम सब शराब पीने वाले भी बुरे ही लोग हैं। भला कभी शराब पीकर भी देखा है कि यह अच्छी है या बुरी है, या यों ही कह रहे हो? पीकर देखो, फिर बताना कि इसमें क्या ख़राबी है। दुनिया में कोई चीज़ न अच्छी है न बुरी। तुम्हें इसके मज़े का क्या पता? लो, अब हम अपने हाथों से तुम्हारे गिलास में डालते हैं। अब मना करके सबका मजा किरकिरा मत करना और हमारा मूड मत बिगाड़ना…"

वह बेचारा इस दबाव में आकर पी लेता है और एक बार की भूल का ख़मियाज़ा उसे सारी उम्र भुगतना पड़ता है। उस दिन की शराब से उसका ख़ाना ख़राब हो जाता है। एक बार पी लेने से उसके मन में यह विचार पैठ जाता है कि अब मैं पहले-जैसा पवित्र नहीं हूँ; अब मुझे दाग़ तो लग ही चुका है; अतः अब क्या परहेज? वह भूल जाता है कि दो ग़लतियाँ मिलाकर एक सम्यक् बात नहीं बनती (Two wrongs do not make a right)। यदि वह उस दिन डटा रहता तो वह सदा के लिए बोतल की ग़ुलामी से बच जाता। फिर, यदि दबाव में आकर पीने के बाद भी दोबारा इस भूल का शिकार न होता तो "सुबह का भूला शाम को भी घर वापिस आ जाये तो ठीक ही है"—इस उक्ति के अनुसार बाकी जीवन में तो वह इस पतनकारी चीज़ के चंगुल से बच जाता। परन्तु जैसे कि जापानी भाषा में एक कहावत है—"पहले मनुष्य शराब को पीता है, फिर शराब शराब को पीती है और फिर शराब मनुष्य को पी जाती है।" First man drinks the wine, then wine drinks the wine and, finally, wine drinks the man—इसके अनुसार आख़िर शराब ही मनुष्य के जीवन को पी जाती है। वह छः फुट का मनुष्य एक फुट की बोतल में बन्द हो जाता है।

परिस्थितियों के वशीभूत

कई लोग ऐसे भी हैं जो मानसिक तनाव, जीवन में किन्हीं बड़े कार्यों में असफलता या परिवार एवं दफ़्तर के लोगों से अनबन होने से या अशान्ति के किन्हीं अन्य कारणों से पहली बार शराब को मुंह लगाते हैं। जीवन की समस्याओं का सामना करने की सामर्थ्य स्वयं में न अनुभव करके वे अपनी परिस्थितियों से परे होने के लिए पीना शुरू करते हैं। उनको बताया गया होता है कि शराब के नशे में सब दुःख दूर हो जाते हैं, सब ग़म ग़लत हो जाते हैं

और मनुष्य मानसिक परेशानियों से छुटकारा पा लेता है; उन्हें क्या मालूम कि धीरे-धीरे इस आदत से परेशानियाँ और भी बढ़ेंगी।

शराब क्यों न पीयें ?

प्रश्न उठता है कि आध्यात्मिक लोगों को मद्यपान के विरुद्ध क्या आपत्ति है ? इसका उत्तर यह है कि—

१. अध्यात्मवाद मनुष्य के व्यवहार को श्रेष्ठ बनाना चाहता है और उसके कर्मों को सुधारना चाहता है ताकि उसके अपने जीवन में भी शान्ति बनी रहे और वह दूसरों के लिए भी दुःख का कारण न बने। इसके लिए वह मनुष्य को ऐसा मार्ग बताता है कि जिससे उसकी चेतना और निर्णय शक्ति बनी रहे, उसका विवेक जागृत हो, उसका मन सन्तुलित रहे और उसका कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण बना रहे। **परन्तु मद्यपान का प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क, विवेक, मानसिक सन्तुलन और कर्मेंद्रियों पर इसके बिल्कुल विपरीत ही पड़ता है। शरीर-विज्ञान-वेत्ता कहते हैं कि शराब सारे तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System) पर बहुत हानिकारक प्रभाव डालती है।** मनुष्य के तन्त्रिका तन्त्र में (१) मस्तिष्क (Brain) (२) मेरु-रज्जू (Brain Stem) (३) अनु-मस्तिष्क (Lower brain) (४) मैडूला ओबलोगेन्टा (Medulla Oblongeta) जो मस्तिष्क और मेरु रज्जू को जोड़ता है और (५) वे तन्त्रिकायें भी शामिल हैं जो बाहर से मस्तिष्क की ओर संदेश ले जाती हैं अथवा मस्तिष्क से विभिन्न अंगों के लिए आदेश ले जाती हैं। इन्हीं तन्त्रिकाओं के द्वारा ही मस्तिष्क सारे शरीर को नियन्त्रण में रखता है। जिन्होंने भी शरीर-विज्ञान का थोड़ा अध्ययन किया है वे जानते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क के जो दो गोलार्द्ध भाग (Cerebral hemispheres) हैं, वे मनुष्य के कार्यों पर नियन्त्रण रखने के अतिरिक्त समझने, विचार करने, निर्णय करने और सन्तुलन बनाये रखने तथा चेतना के केन्द्र हैं। मनुष्य का अनुमस्तिष्क(Lower Brain) माँसपेशियों (Muscles) के कार्यों और क्रियाओं में तालमेल और सन्तुलन कायम रखता है। इसी प्रकार, मैडूला ओबलोंगेटा (Medulla Oblongata) श्वास व हृदय के क्रिया-कलापों को नियन्त्रित करता है और मेरु-रज्जू (Brain Stem) से जो अनेक तन्त्रिकायें (Nerves) निकलती हैं वे ही मस्तिष्क की ओर संदेश ले जाती हैं और वहाँ से आदेश लाती हैं। **अब देखा गया है कि मद्य में जो अल्कोहल (Alcohol) होती है उसकी मात्रा अधिक होने पर मस्तिष्क के गोलार्द्धों पर मद्य का ऐसा प्रभाव होता है जिससे मनुष्य की संयम शक्ति बहुत घट जाती है और वह अपनी वाणी पर भी नियन्त्रण नहीं रख सकता। इसका परिणाम यह होता है कि वह अधिकाधिक ऊँचा-ऊँचा, रोब से या अनर्गल ही बोलने लगता है जिससे दूसरों के साथ उसका झगड़ा हो जाता है।** वह अपनी निर्णय शक्ति और मानसिक सन्तुलन खो बैठता है और बचपन से लेकर अब तक अर्जित सभी सद्गुण मद्यपान की अवस्था में गँवा बैठता है। वह

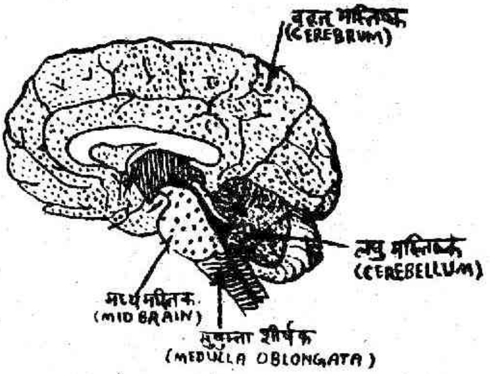

[मनुष्य के मस्तिष्क के विभिन्न भाग]

भावावेश में आकर स्वच्छन्दतापूर्ण आचरण करता है। इस प्रकार उसके नैतिक पक्ष को काफ़ी हानि होती है। मेडुला ओबलोंगेटा और अनुमस्तिष्क पर प्रभाव पड़ने से अधिक शराब पीने वाला व्यक्ति अपने शरीर को भी ठीक प्रकार से कन्ट्रोल में नहीं रख सकता। यहाँ तक कि यदि उसने अधिक शराब पी ली हो तो वह गन्दी नालियों में जाकर गिरता है, गन्दी गालियाँ देता है, और गन्दी हरकतें करता है।

शराब से अनेक हानियाँ

देखा गया है कि अधिक शराब पीने पर वह कामातुर हो उठता है और उसके व्यवहार से उसकी धर्म-पत्नी और घर वाले रुष्ट हो जाते हैं और उसके अड़ोस-पड़ौसी उसे चरित्रहीन मानने लगते हैं। इस नशे में वह लोगों के समक्ष अपने पैसे, अपनी बुद्धि, अपने मेल-मिलाप आदि के बारे में खूब डींग मारता

है, हानि के सौदे कर लेता है और फिर होश में आने पर जब उस द्वारा हुई उसकी हरकतें बताई जाती हैं तो उससे वह समझता है कि अब वह लोगों की नज़रों से गिर चुका है। जब वह अपने से छोटों अथवा अपने स्तर से नीचे के लोगों से अपने चरित्र की आलोचना सुनता है तो उसे अन्दर से शर्म भी आती है, उसके मन में गुस्सा भी पैदा होता है, उसके सामने निराशा भी कई बार आती है और, इसलिए, वह दुःखित हो उठता है और इस दुःख एवं अशान्ति को भुलाने के लिए वह घर में ही पड़ा-पड़ा और शराब पीता है। धीरे-धीरे हालत यह होती है कि अपने से भी कम स्तर के लोगों में जाकर वह जाम और जमशीद की बातें करता है और उनके साथ मिल कर पीता है। इसके लिए दिन-प्रतिदिन उसे पीने और पिलाने के लिए अधिकाधिक पैसे की आवश्यकता होती है और अब लोग उसे पैसा देने से भी डरते हैं क्योंकि वे यह सोचते हैं कि यह सारा पैसा शराब में ही बरबाद कर देगा और इस से कुछ भी वापस नहीं मिलेगा। इससे उसे और क्रोध आता है और दुःख भी होता है क्योंकि वह महसूस करता है कि उसकी पत्नी, उसके बच्चे और उसके मित्र अब उसे पैसा नहीं देते और वे उसे एक गिरे हुए इन्सान की तरह देखते हैं और उससे दूर भागने की कोशिश करते हैं। इससे उसमें चोरी करने, उधार लेने, झूठ बोलने तथा अधिक खर्च करने की और तरह-तरह की दूसरी बुरी आदतें पड़ जाती हैं। इन सब कारणों से ही आध्यात्मिक व्यक्ति मनुष्य को शराब पीने के लिए मना करता है क्योंकि मद्यपान से मनुष्य को दुःख से छुटकारा पाने की जो आशा है, वास्तव में वह मिथ्या है, अज्ञानता पर आधारित है और अधिक दुःख में धकेलने वाली है। इस आदत से मनुष्य दो-चार घण्टे के लिए अपनी परेशानियाँ भूलता होगा परन्तु देखना तो यह है कि उसकी बजाय १०० बुराइयाँ और उसके पल्ले पड़ जाती हैं, यहाँ तक कि सामान्य रीति से सम्मान और स्वमानपूर्वक उसका जीना भी मुश्किल हो जाता है।

२. शराब से शारीरिक रूप से भी हानि

अध्यात्मवादी व्यक्ति मनुष्य के नैतिक पक्ष और आध्यात्मिक पक्ष के अतिरिक्त शारीरिक रूप से भी मनुष्य का भला ही चाहता हैं क्योंकि संसार रूपी यात्रा में शरीर रूपी 'रथ' अथवा 'नाव' का भी अपना महत्त्व है। आत्मा यदि 'देव' है तो शरीर 'देवालय' अथवा 'मन्दिर' है। धर्म साधने के लिए शरीर भी एक साधन है। अतः उसका स्वस्थ एवं सुदृढ़ रहना ज़रूरी है। प्रयोगों और निरीक्षणों द्वारा देखा गया है कि मद्यपान से शरीर के अंगों का सामंजस्य बिगड़ जाता है और मनुष्य की श्वास क्रिया, हृदय गति और रक्त चाप (Blood Pressure) पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है और इन सभी का ठीक होना मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है, इसलिए मद्यपान का निषेध किया जाता है।

क्या शराब से सचमुच हानियाँ होती हैं ?

अब कुछ लोग कहते हैं कि—"शराब के सब हानिकारक प्रभाव जो हमने बताये हैं, ये तो मद्य में अधिक अल्कोहल (Alcohol) होने से होते हैं। यदि उसमें अल्कोहल की मात्रा ही कम हो और मनुष्य उसे धीरे-धीरे और भोजन के साथ-साथ पिये तब तो उसकी चेतना पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता। बुद्धिजीवी लोगों के कितने ही भोज (Dinner Parties) अथवा मिलन (Get-together) ऐसे होते हैं जिनमें सुरा का प्रयोग होता है परन्तु हम देखते हैं कि उसमें प्रायः लोगों का तो मानसिक सन्तुलन बना ही रहता है और वे कोई अनाप-शनाप नहीं बोलते। अनेक राजनीतिक समारोहों में बड़े-बड़े नेता शराब पीते हैं और वे महत्त्वपूर्ण वक्तव्य भी देते हैं।"

वास्तव में ऐसा सोचना एक भ्रान्ति है क्योंकि यदि मस्तिष्क अथवा शरीर पर उसका कोई अच्छा या बुरा प्रभाव ही न होता हो तो मनुष्य पैसे खर्च करके उसे क्यों पीता ? जिन्होंने इस विषय में प्रयोग एवं परीक्षण किये हैं, उनका कथन है कि यदि सुरापान के परिणामस्वरूप मनुष्य के ख़ून में अल्कोहल का स्तर ०.०५% से कम हो तो वह सुस्त-सा अनुभव करता है। यदि ०.०५% से ०.१% तक हो तो वह पुरुष अपने कार्यों में साहसी व क्रियाशील देखने में आता है परन्तु वास्तव में उसका यह साहस और उसकी यह क्रियाशीलता उसके हल्के नशे व भावुकता की स्थिति के कारण होते हैं। तभी तो ऐसी अवस्था में ऐसे लोग स्त्रियों की ओर आकर्षित होते हैं और तनिक उकसाहट की अवस्था में होते हैं। अगर रक्त में अल्कोहल का स्तर ०.१% से ०.२%

तक हो जाए तो मनुष्य अपने कार्य से होने वाले परिणामों को गम्भीरता से नहीं सोचता और दुःस्साहस करता है तथा अपनी आर्थिक, शारीरिक और सामाजिक स्थिति से बढ़-चढ़कर बातें करना, बड़े कारनामे कर दिखाने का दम भरता, अनुचित कर डालता या शेखी बघारता है। यदि रक्त में अल्कोहल की मात्रा ०.२% से ०.३% तक हो तो मनुष्य की बुद्धि का उसके विचारों पर अंकुश नहीं रहता और वह कर्मेन्द्रियों का संयम खो-सा बैठता है। यह एक ऐसी दशा है जिसमें और जिससे आगे ख़तरनाक परिणाम होने की सम्भावना बनी रहती है। यदि रक्त में अल्कोहल का स्तर ०.४% हो जाए तो मनुष्य ऐसी हरकतें करता है जिससे दूसरे लोग उससे परेशान हो जाते हैं। घर अथवा भोजन-स्थान का वातावरण बिगड़ जाता है और अड़ोसी-पड़ोसी भी तमाशा देखते हैं। जब इसका स्तर ०.५% हो जाता है तब वह व्यक्ति **सुध-बुध भूल जाता है।** वह अपने को कुछ-का-कुछ समझता है, खूब नशे में चूर होता है। तब वह चीज़ों को उलटता-पुलटता, लोगों को डाँटता-डपटता और ऊट-पटाँग बात करता है। जब इसका स्तर ०.६% हो जाता है तो प्रायः मनुष्यों के होश-हवास ही नहीं रहते। वे लड़खड़ाते हुए, गिरते-पड़ते से चलते हैं और यदि ऐसी अवस्था में वे रास्ते पर चल रहे हों तो उनकी दुर्घटना होने का डर रहता है। यदि अल्कोहल का स्तर ०·७% हो तब तो कुदरत ही खैर करे! इस प्रकार, स्पष्ट है कि शराब में जो अल्कोहल है, जिसके प्रभाव से ही मनुष्य को नशा होता है और जिसके कारण ही लोग शराब पीते हैं, कोई स्वास्थ्यकर पेय (Drink) नहीं क्योंकि, चाहे उसका स्तर कुछ भी हो, वह, मनुष्य के मस्तिष्क को थोड़ा-बहुत तो प्रभावित करती ही है। फिर, ऊपर राजनीतिक संगठनों के अवसरों पर जो महत्त्वपूर्ण वक्तव्य देने की बात कही गई है, उनके बारे में सत्यता तो यह है कि वे वक्तव्य तो पहले ही से तैयार किये गये होते हैं और मद्यपान तथा भोज से पहले ही दिये जाते हैं और उसके बाद भी वे बहुत हल्का ही मद्यपान करते हैं और फिर उसका भी कुछ तो प्रभाव उन पर पड़ता ही है।

हाँ, अल्कोहल की मात्रा का प्रभाव एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति पर, किन्हीं कारणों से, थोड़ा कम-ज्यादा होता है और जो लोग इसे बहुत हल्की मात्रा में लेते हैं और ख़ाली पेट न लेकर भोजन के साथ लेते हैं, और हर आये दिन लेते रहते हैं, उन अभ्यस्त लोगों पर इसका प्रभाव तुलनात्मक कुछ कम होता है, परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनके भी मस्तिष्क के गोलार्द्धों पर, उनकी श्वास क्रिया पर, रक्त चाप पर, यकृत (Liver) तथा आमाशय पर प्रभाव पड़ता अवश्य है। **जो चीज भोजन का अंग नहीं है, शरीर पर उसका प्रभाव अवश्य ही थोड़ी-बहुत हानिकर ही प्रतिक्रिया लिए हुए होगा**—यह निश्चित है। हाँ, वह प्रभाव अभी मालूम हो या बाद में कभी और वह ज्ञात हो या अज्ञात, विज्ञान ने उसे खोज डाला हो या वह अभी उसे न जान सका हो। सिग्रेट इसका एक उदाहरण है। पहले शरीर-विज्ञान को इसके बुरे परिणामों का इतना स्पष्ट रीति से ज्ञान नहीं था। डी०डी०टी० (D.D.T.) के बुरे परिणामों का भी वैज्ञानिकों को पहले कहाँ पता था? इसी प्रकार, कितनी ही औषधियों के बुरे परिणामों का भी तो चिकित्सकों को बाद में ही मालूम हुआ। अतः यद्यपि सुरा को लोग एक पेय (drink) कहते हैं और यद्यपि ये खाने की वस्तु न होकर पी ही जाने वाली होने के कारण 'पेय' ही है तथापि वास्तव में सही अर्थ में यह एक पेय (drinkable) है नहीं। लोगों ने नाम इसका 'सुरा' रखा है परन्तु है यह 'असुरा' क्योंकि इससे मनुष्य की दैवी सम्पदा का विकास नहीं होता बल्कि उसमें अनैतिकता ही पनपती है।

अतः सभी बातों पर विचार करते हुए हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि मद्य-पान वैज्ञानिक तथा नैतिक, दोनों आधारों पर मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क, मन, बुद्धि और उसकी आध्यात्मिक उन्नति के लिये हानिकारक है। □

कैसे कहा जा सकता है कि मद्यपान विवेक तथा निर्णय शक्ति पर बुरा प्रभाव डालता है ?

बहुत बार यह कहा जाता है कि "शराब पीने वाले सभी लोग निर्णय शक्ति और मानसिक सन्तुलन से रहित तो दिखाई नहीं देते । क्या हम समुन्नत देशों मैं नहीं देखते कि वहां के लोग प्राय: नित्य शराब पीते हैं और फिर भी वे नई-नई वैज्ञानिक खोजें करते हैं, व्यापारिक उन्नति करते तथा अनेक प्रकार के उच्च बौद्धिक कार्य करते हैं ? यदि शराब का निश्चित रूप से बुरा ही प्रभाव होता तब तो उन देशों में बाजारों में लड़खड़ाते हुए ही लोग देखने में आते और जगह-जगह झड़पें और मुठभेड़ ही देखने को मिलती···।"

प्रश्न ठीक है । परन्तु ऐसा प्रश्न करने वाले लोग प्राय: वहाँ की स्थिति से या तो पूरी तरह परिचित नहीं हैं और या उस पर वे गम्भीरता से विचार नहीं करते ! हम पूछते हैं—क्या वहाँ पर शराब पीने से अधिक **कार दुर्घटनाएं** (Car accidents) नहीं होतीं ? क्या समाचार पत्रों में ये समाचार नहीं छपते कि शराब के परिणाम स्वरूप बढ़ती दुर्घटनाओं को कम करने के लिए कारों में ड्राइवर की सीट के सामने ऐसे यन्त्र लगाने की व्यवस्था हो रही है कि ड्राइवर को अपनी स्थिति का पता लग जाये और वह कार रोक ले या ड्राइवर के साँस में अल्कोहल के प्रभाव से कार स्वत: ही रुक जाये ? क्या यह शराब का प्रभाव नहीं कि वहाँ वैज्ञानिक, राजनीतिक नेता, सैनिक अधिकारी तथा सैनिक अस्त्र-शस्त्र बनाने वाले उद्योगपति और प्रशासक मिलकर सारे भूमण्डल के विनाश के लिए, मानव-मात्र की हत्या के लिए, देश-विदेश के विध्वंस के लिए, स्वयं अपने परिवार, अपने वंश पर भी अटल खतरा मोल लेकर एटम बम तथा अन्य ऐसे अस्त्रास्त्र बनाने के लिए लगे हुए हैं ? स्पष्टत: मौत का साधन रचते हुए भी उन्हें मौत दिखाई नहीं देती, या दिखाई देते हुए भी वे उसकी ओर आगे बढ़ने की योजना बनाते हैं ! क्या ये बुद्धिमता (Wisdom) का चिह्न हैं ? क्या लड़ाई और वह भी इस तरह की लड़ाई शान्त और सन्तुलित मन की देन है ? जिसके निर्माण से सारी सभ्यता ही नष्ट हो जाये और न हम रहें न दूसरे, उन अस्त्रास्त्र को और अधिक बनाते जाने का निर्णय क्या स्वस्थ निर्णय शक्ति का परिणाम है या यह किसी मानसिक रोग का चिह्न (Symptom) है ? इसे **बचाव** (Defence) के लिए आवश्यक माना जाना, जबकि इससे बचाव या सुरक्षा का कोई तरीका ही नहीं, बल्कि सर्वनाश ही इसका एक मात्र 'फल' है, क्या यह सही चेतना तथा सही होश-हवास (Sanity) है ? जबकि करोड़ों लोग भूखे मर रहे हैं, तब खरबों डालर इस विनाश-सामग्री की तैयरी पर लगाये चले जाना—क्या इसी का नाम नैतिकता है ? क्या मनुष्यों द्वारा ऐसे आविष्कार किसी सन्तुलित मन की उपज हैं या ये ऐसी दशा के चिह्न हैं जो मानव-मात्र की आत्म-हत्या की तैयारी में हो ?

पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न होने का एक कारण है—शराब

फिर, वहाँ के पारिवारिक जीवन इस 'शराब-ख़ाना ख़राब' के कारण किस प्रकार छिन्न-भिन्न हो चुके हैं ! क्लबों में शराब पीकर वे पर-स्त्रियों से जिस प्रकार के हाव-भाव प्रकट करते हैं और जीवन में जिस प्रकार एक तलाक, दूसरा तलाक, तीसरे तलाक तक के विभिन्न कारण, बन जाते हैं, क्या उससे यह प्रमाणित नही होता कि उनका अपने व्यवहार पर नियन्त्रण नहीं, उनकी वाणी शराब के नशे में बेकाबू हो जाती है ? क्या छोटी-छोटी बातों में तनाव (Tension) होने की स्थिति इस बात का चिह्न नहीं है कि शराब ने उनके मस्तिष्क में भावावेश की स्थिति बना डाली है ? यदि शराब से मनुष्य की निर्णय शक्ति और उसका मानसिक सन्तुलन कायम रहता होता तो भारत सरकार ने यहाँ के उच्च न्यायालयों व सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए यह आदेश क्यों निकाला था कि न्यायाधीश पद की नियुक्ति के लिए वह व्यक्ति मद्यपान न करता हो । भारत सरकार ने यहाँ देहली में ही स्थान-स्थान पर

बड़े-बड़े बोर्डों पर क्यों लिखवा रखा है कि शराब विष है ? यहाँ लोग क्या यों ही कहते हैं कि ट्रक के कई ड्राइवर शराब पीकर ट्रक चलाते हैं और उनके इस कुकृत्य के कारण कई दुर्घटनाएँ हो जाती हैं ?

हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि उन्नत देशों (Advanced Countries) **ने जो प्रगति की है वह उनकी शिक्षा के कारण और उनके वहाँ शोध कार्य** (Research Work) **के लिये दी गई सहूलियतों के फलस्वरूप है। शिक्षा के फल को शराब का फल मानना तो सरासर भूल है।** उच्च शिक्षा से वे नये-नये आविष्कार करते हैं, उनसे नई-नई चीजें बनाते हैं, बड़े-बड़े कारखाने खोलते हैं, उन कारखानों में बनी वस्तुओं को विश्व-भर में बेच कर खूब पैसा कमाते हैं, उस पैसे को फिर शिक्षा और शोध कार्य पर काफ़ी खर्च करते हैं और इससे और अधिक भौतिक प्रगति करते हैं। परन्तु शराब पीने या मद्यपान से होने वाले भावावेश तथा असंयम के परिणामस्वरूप पारिवारिक जीवन में स्नेह का अभाव, मन की अस्थिरता, इन्द्रियों का स्वच्छन्द व्यवहार, भोग-प्रियता आदि भी इसके कारण हैं। तभी तो वे आज शराब के अतिरिक्त दूसरे-दूसरे नशीले द्रव्य (Drugs) भी प्रयोग करने लगे हैं तथा अशान्ति के निवारण के लिए भारतीय धर्मों की ओर भी झुकाव प्रदर्शित करते हैं यद्यपि स्वयं भारतीय धर्म भी आज अपनी आदिम, शुद्ध स्थिति में नहीं है। अतः उन्नति को शराब के साथ मिला देना तो अपने ही मस्तिष्क की अव्यवस्थितता प्रकट करना है; शराब का मेल तो भावावेश, स्वभाव की क्रूरता, नैतिकता के ह्रास तथा सुन्दरी और प्राकृतिक वस्तुओं की भोग-लिप्सा से है जो हम स्पष्ट वहाँ देखते हैं।

क्या मद्यपान न करने वालों में ये बुरी आदतें नहीं है ?

इसी प्रसंग में पूछा जा सकता है कि—"क्या जो लोग शराब नहीं पीते, वे इन सब बुरी आदतों से बचे हुए हैं ? क्या हम नहीं देखते कि मद्य को कभी हाथ न लगाने वालों में भावावेश होता है, उनका भी अपनी वाणी और अपने व्यवहार पर नियन्त्रण नहीं होता, वे भी बात-बात में गाली-गलौच देते हैं, वे भी खूब लड़ाई-झगड़ा करते हैं...।"

हाँ, मद्य को स्पर्श न करने वाले भी अनेकानेक लोगों में ये दुर्गुण होते हैं। हमारे कथन का यह भाव कदापि नहीं था कि ये दुर्गुण केवल शराब रूप दुर्व्यसन से या पेय से होते हैं। शराब तो ऐसे बुरे व्यक्तित्व का एक कारण है; इसके अतिरिक्त कारण तो और भी बहुत हैं। कुछ प्रभाव तो ऐसे हैं जो विशेष तौर पर शराब ही का दुष्परिणाम हैं; उदाहरण के तौर पर अधिक मात्रा में मद्यपान के परिणाम स्वरूप लड़खड़ाना, उस अवस्था में विवेक को काफ़ी हद तक खो बैठना आदि और व्यक्तित्व की कुछ बुराइयाँ ऐसी हैं जो शराब से भी तथा अन्य व्यसनों या कारणों से भी होती हैं। मनुष्य को उनसे भी बचना चाहिये। उदाहरण के तौर पर कुसंग, घटिया साहित्य आदि भी उसके कुछ कारण हैं। फिर, हमने तंत्रिका तन्त्र, यकृत, हृदय, श्वास क्रिया, रक्त चाप आदि पर मद्यपान के जो बुरे प्रभाव बताये हैं, वे तो वैज्ञानिक परीक्षणों से भी सिद्ध ही हैं। रात को मद्यपान के फलस्वरूप दूसरे दिन सिर में दर्द और बदन का टूटना, मद्यपान के परिणाम स्वरूप अनिद्रा रोग, दिल की धड़कन तेज़ होना, रक्त चाप बढ़ना, बार-बार मुँह सूखना, गुर्दे पर अधिक दबाव, स्मरण शक्ति का ह्रास, तंत्रिका रोग (Peripheral neurotis) जो कि शरीर में थायमीन तथा विटामिन 'बी' की कमी के कारण होते हैं, आमाशय की गड़बड़ी (गैस्ट्रीटीज़) जो कि अल्कोहल के कारण आमाशय में जलन पैदा होने तथा उसके भीतरी त्वचा में सूजन होने से होता है, यकृत में कठोरता (सिरोसिस) रोगों से लड़ने की शक्ति में कमी (Lack of resistance to disease) आदि कई शारीरिक हानियाँ होती हैं।

क्या सुरा से लाभ कोई भी नहीं होता ?

शराब का पक्ष लेने वाले ऐसे भी जन हैं जो कहेंगे—"आपने तो शराब में सभी बुराइयाँ ही बताई हैं। इसमें कोई तो अच्छाई भी होगी ही वरना लोग इसे पीते क्यों है ?

हमारा मन्तव्य तो यह है कि लोग इसे अज्ञानतावश और असहाय होकर पीते हैं। संसार में शराब के कुछ अच्छे गुण बताये जाते हैं परन्तु वास्तव में वे आज के विज्ञान की दृष्टि में भ्रान्ति ही पर आधारित हैं। उदाहरण के तौर पर कुछ लोग कहते हैं कि शराब पीने से शक्ति मिलती है और उसके फलस्वरूप मनुष्य को अधिक देर तक थकावट नहीं होती और

वह उत्साह और उमंग से कार्य करता रह सकता है।"

क्या मद्यपान से शक्ति बढ़ती है और थकावट नहीं होती ?

वास्तव में शराब पीने से मनुष्य को जो नशा-सा आ जाता है, उसके कारण उसे थकावट महसूस नहीं होती। थकावट न होना अलग बात है और थकावट का महसूस न होना दूसरी बात है। शराब से थकावट दूर नहीं होती, न ही अतिरिक्त शक्ति (Additional Energy) मिलती है, बल्कि तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System) पर इसका जो प्रभाव पड़ता है, उसके परिणाम स्वरूप कुछ देर तक थकावट का महसूस होना टल जाता है। इसलिए मनुष्य अपने कार्य में लगा रहता है। परन्तु बाद में उसे उतना ही अधिक विश्राम भी करना पड़ता है और अधिक काम करने का मुआविज़ा चुकाना पड़ता है।

इसी प्रकार, शराब पीने के बाद जो उत्साह देखने में आता है, वह वास्तव में भावुकता के ही कारण से होता है; वह कोई स्थायी सद्गुण नहीं है, न ही कोई सात्त्विक एवं पौष्टिक भोजन का परिणाम है बल्कि वह तो क्षणिक भावावेश ही के कारण से होता है।

क्या ठंडे इलाकों में मद्यपान आवश्यक है ?

इसी प्रकार, लोगों में एक भ्रान्ति यह भी है कि मद्यपान से मनुष्य शीत के प्रभाव से सुरक्षित रहता है। अतः वे कहते हैं कि "शीत-प्रधान देशों में तो इसका पीना आवश्यक अथवा लाभकर है।" परन्तु वास्तविकता यह है कि मद्यपान करने वालों को सुरापान के तत्काल बाद त्वचा (Skin) की रक्त-नलिकाओं में एक प्रकार की सनसनी या गुनगुनेपन का अनुभव होता है। मालूम तो ऐसा होता है कि शरीर में गर्मी बढ़ गई है किन्तु वास्तव में वह त्वचा में गर्मी के कम होने का चिह्न होता है। अल्कोहल से भी कुछ उष्णता पैदा तो होती है परन्तु वह तो पाचन प्रक्रिया के बाद ही होती है। अतः तत्काल ही कथित उष्णता के धोखे में कई लोग ठंड से बचने का उपाय नहीं करते और शरीर की सहन-शक्ति कम होने के कारण वे सर्दी का शिकार हो जाते हैं और बाद में कहते हैं कि हम ठण्डक से ग्रस्त (expose) हो गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मद्यपान से अनेकानेक हानियाँ हैं। हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपने परिवारजनों से मिलकर पहले शौकिया ही इसे पीना शुरू करे और उसमें पहले-पहल बहुत बुरा प्रभाव देखने में न आये परन्तु धीरे-धीरे मनुष्य को ऐसी आदत पड़ जाती है कि वह इसे छोड़ नहीं सकता। पुनश्च, आज किसी व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक या अन्य परिस्थितियाँ ऐसी भी हो सकती हैं कि उसका मन अशान्त हो और वह मदिरा की मात्रा को बढ़ा ले। एक बार लत पड़ जाने पर तो मनुष्य उसकी मात्रा बढ़ाता ही है; प्रायः घटाता कोई नहीं है।

बुरी आदत से छूटना ही भला

परन्तु खेद की बात है कि कुछ लोगों का विवेक ऐसा तो नष्ट हो जाता कि वे बुरी आदतों के परिणामों को न देखकर मद्यपान की आदत को किसी-न-किसी जायज़ या नाजायज़ आधार पर जारी रखना चाहते हैं। वे कहते हैं कि मद्यपान तो प्राचीन काल में भी लोग करते थे; तब मद्य को 'सोमरस' कहा जाता था। उस काल के लोग इन्द्र को भी सोमरस का अर्घ्य देते थे। पुराने ग्रन्थों में सोमरस का वर्णन मिलता है...।"

वस्तुतः यह मत भी भ्रान्तियों पर ही आधारित है। वास्तव में 'सोम' शब्द 'अमृत' का पर्यायवाची है। परमात्मा शिव को 'सोमनाथ' या 'सोमेश्वर' भी कहा गया है। उनका यह नाम मद्यपान के कारण से तो नहीं है बल्कि यह तो ज्ञान रूपी अमृत' के कारण है। 'सोम' शब्द 'चन्द्रमा' के लिये भी प्रयुक्त होता है। इसलिये जिसे अंग्रेज़ी में 'मन्डे' (Monday) कहते हैं, उस दिन को संस्कृत तथा हिन्दी में 'सोमवार' कहा जाता है। अतः जैसे चन्द्रमा रात्रि के अन्धेरे में प्रकाश देता है, वैसे अज्ञानान्धकार में ज्ञान रूपी चाँदनी देने वाला या अमृत-वर्षा करने वाला होने के कारण भी परमात्मा को 'सोमनाथ' कहा जाता है। इस भाव को न जानने के कारण 'सोम'-रस को 'ज्ञान-रस', जो कि मनुष्य को 'एक-रस अवस्था' (समावस्था) में टिकता है, न मानकर एक प्रकार का मद्य मानना अर्थ का अनर्थ करना है।

हाँ, ज्ञान भी मनुष्य की चेतना को प्रभावित तो करता है। वह मनुष्य को एक प्रकार के नशे की

स्थिति में ले तो आता है। उस अलौकिक नशे को कई लोग 'नारायणी नशा', अन्य कई 'मौलाई मस्ती' और दूसरे लोग 'नाम ख़ुमारी' आदि-आदि नाम देते हैं। अतः ऐसी मस्ती प्रदान करने वाला होने के कारण बाद के लोगों ने उसे भी एक प्रकार की मदिरा ही मान लिया होगा! परन्तु ज्ञान रूपी सोम-रस तो वास्तव में ऐसा रस है जो मद्यपान को सहज ही छुड़ा देता है। चूँकि वह 'असुर' को 'सुर' बनाने वाला 'आध्यात्मिक पेय' (Drink) है, इसलिये ही वह 'सुरा' भी है जो कि अल्कोहल वाली सुरा की गुलामी से सदा के लिए मुक्त करा देती है। बाद में जब लोग देहाभिमानी हुए तो ज्ञान रूप अमृत का पता न होने के कारण उन्होंने जैसे रासायनिक तौर पर (Chemically) अमृत (Elixir) या आबे-हृय्यात बनाने की कोशिश की वैसे ही नशा देने वाले किसी रसायन को भी बनाने के लिए प्रयोग किये। हमारे इस कथन का प्रमाण विज्ञान का इतिहास (History of Science) है। इसी खोज के दौरान उसे कोई ऐसी जड़ी-बूटी या कोई ऐसी रासायनिक विधि हाथ लगी होगी कि जिससे उसने नशा देने वाला कोई पेय बना डाला होगा और प्राचीन काल से प्रसिद्ध 'सोम-रस' या 'सुरा' के नाम को लेकर अब निर्मित रसायन को यह नाम दे दिये होंगे। आज भी 'आर्य भट्ट', 'भास्कर' आदि नाम जैसे वैज्ञानिकों के नाम पर रखे गये हैं और कई आविष्कारों के नाम पहले किसी काल में उन गुणों वाले किसी पदार्थ के नाम को लेकर रखे जाते हैं, वैसे ही उन्होंने भी 'सुरा' और 'सोमरस' ये नाम रख लिये होंगे, वरना प्राचीन काल के लोग, जिन्हें श्रेष्ठ कर्मों के कारण 'देवता' कहा जाता है, ऐसे भ्रष्ट पेय का पान तो कर नहीं सकते थे। बल्कि वास्तविकता तो यह है कि 'सुरा' और 'सोमरस' और उससे होने वाले नशे के बारे में ग़लत धारणा बनाकर लोगों ने देवताओं के बारे में भी यह ग़लत धारणा बना ली कि वे मद्यपान करते थे!! इस विषय में प्रसिद्ध कवि शेक्सपियर के इस वाक्य को उद्धृत करना उपयोगी होगा जो उस द्वारा लिखित ओथैलो (Othello) नामक नाटक में मिलते हैं—"हे सुरा के अदृश्य तत्व! अगर तेरा अन्य कोई नाम न हो तो तुझे शैतान की संज्ञा दी जा सकती है।" अब विचारवान व्यक्ति सोचें कि देवताओं का इस शैतान से भला क्या मेल! इसी शराब के बारे में कुरान शरीफ़ में लिखा है कि—"अंगूर के प्रत्येक दाने में शैतान वास करता है" क्योंकि तब अंगूरों से ही शराब बना करती होगी।

इसी प्रकार, सभी धर्मों के स्थापकों ने मद्यपान का निषेध किया है। तब भला दिव्य धर्म में जो स्थित होने के कारण 'देवी' और 'देवता' कहलाते थे, वे मद्यपान कैसे करते होंगे?

प्राचीन काल में शराब का प्रयोग नहीं था

सभी पुराने ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा पुराकाल के अवशेषों के अध्ययन से पता चलता है कि शराब या रासायनिक तौर पर बनाई गयी सुरा २४०० या २५०० वर्षों से पहले की बात नहीं है। मिस्र के जो शिलालेख या शिल पर चित्र मिलते हैं या जिन भारतीय ग्रन्थों में इसका उल्लेख है, उनमें से कोई भी इससे पुराना नहीं है। इसका अधिक प्रचलन तो वास्तव में मुसलमान रसायन-वेत्ता 'जाबिर इब्न हय्यान' द्वारा मद्य बनाने के बाद ही शुरू हुआ। भारत में तो यह कोई विरला 'म्लेच्छ' कहलाने वाला व्यक्ति कभी इसका पान किया करता होगा। इस विषय में फ्राँसीसी यात्री बर्नियर के निम्नलिखित वाक्य उद्धृत करना ठीक होगा जो उसने सन् १६५८ में अपनी भारत यात्रा के बाद लिखे थे—

'शराब यहाँ मनोरंजन के लिये ही प्रयोग होती है, परन्तु दिल्ली की यह किसी दुकान पर उपलब्ध नहीं हो सकती। यहाँ पर सभी बुद्धिमान एवं समझदार लोग पवित्र जल ही पीते हैं जिस पर मानो कुछ भी ख़र्च नहीं होता और जिससे कोई हानि भी नहीं होती। सच तो यह है कि गर्म जलवायु वाले इस देश में बहुत कम ही लोग मद्यपान करने की इच्छा करते हैं। इसमें सन्देह की कोई गुंजायश नहीं है कि भारतीय लोग अनेक बुरी आदतों से अपरिचित हैं और इसका कारण उनकी शालीनता है...."

अतः हमें मालूम होना चाहिए कि भारत में मद्यपान का रिवाज मुख्यतः मुसलमान शासकों के शासनकाल में प्रारंभ हुआ। मुसलमान शासकों में से भी पहले शासक वर्ग शराब नहीं पीता था क्योंकि कुरान में इसके लिए निषेध है। बाद में ही उनके राजघरानों में इसका प्रचलन हुआ। इसका अधिक प्रचलन तो अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दिनों

में हुआ। उसने ही पहले-पहल सन् १७९० में आबकारी से सम्बन्धित व्यवस्था के लिए कानून बनाये। उसने शराब बनाने और बेचने के ठेके दिये। जिन्होंने ऊँची बोलियाँ (Bids) देकर, महंगे दाम पर ठेके लिये, उन्होंने अपने एजेन्ट (Salesman and agents) नियुक्त किये, जिन्होंने हर प्रकार से शराब की खपत को बढ़ाया। लोगों को शुरू-शुरू में मुफ़्त शराब दे-दे कर भी उन्हें शराब पीने की आदत डाली गयी। इस प्रकार शराब का प्रचलन बढ़ता गया और इस घोर कलिकाल में मद्यपान भी मनुष्य के नैतिक पतन का एक और कारण बन गया।

फिर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में मद्य-निषेध अथवा नशा बन्दी का कार्यक्रम भी सम्मिलित किया। गाँधी जी मद्यपान के कट्टर विरोधी थे और वे इसे अनेकानेक बुराइयों का बीज मानते थे। उनके निम्नलिखित शब्द इस बात के प्रमाण हैं—

"अगर कभी भारत की शासन सत्ता मेरे हाथ में आई तो मैं प्रथम आधे घण्टे में समस्त शराब की दुकानें बन्द करवा दूँगा और उसके बदले में कोई रकम (मुआविज़ा) भी नहीं दिलाऊँगा। मैं मद्यपान को चोरी और वेश्यावृत्ति से भी अधिक हानिकारक मानता हूँ। वास्तव में दोनों बुराइयों का जन्म इससे ही होता है।"

इसी प्रकार, डा० राजेन्द्र प्रसाद, रविन्द्रनाथ टैगोर, डा० राधाकृष्णन, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि सभी तत्कालीन अग्रगण्य स्वतन्त्रता सेनानियों ने मद्यपान का इस प्रकार जोरदार शब्दों में निषेध किया है परन्तु हम यहाँ स्थानाभाव के कारण उन सभी को उद्धृत नहीं कर रहे। स्वतन्त्रता के बाद हमारे देश के संविधान[1] में भी इस के बारे में निर्देश है। परन्तु अफ़सोस है कि आज भारत के विभिन्न प्रदेश यह बहाना बनाकर कि मद्य पर प्रतिबन्ध लगाने से (१) सरकारी आय में काफ़ी कमी होगी और उसके परिणाम स्वरूप कई विकास-योजनायें धन की काफ़ी कमी के कारण रुक जायेंगी और (२) सरकारी तौर पर प्रतिबन्ध लगने के परिणामस्वरूप लोग घटिया प्रकार से शराब बनायेंगे और उसका प्रभाव पीने वालों के स्वास्थ्य पर बुरा पड़ेगा"—इस प्रकार की थोथी बातें करके सरकार इस पर प्रतिबन्ध नहीं लगाती।

इन सब का परिणाम यह है कि यद्यपि भारत राजनीतिक तौर पर अंग्रेज़ों की गुलामी से मुक्त हो गया है तथापि वह उन द्वारा लायी गई ऐसी बुराइयों की गुलामी से मुक्त नहीं हुआ।[2] इससे भारत के प्राचीन नैतिक मूल्यों का ह्रास ही हुआ है और घर-घर मयख़ाना बनता जा रहा है। शराब और कबाब ने भारत को 'देवालय' से 'वेश्यालय' बना दिया है।

हममें से अनेकों ने अपने बचपन में कितने ही घरों में शराब के कारण झगड़े देखे होंगे। जिस घर में पति शराब पीता है, उस घर में महिला को उसका विशेष दुःख भोगना पड़ता है। अतः इसे छोड़ना ही चाहिए।

परमप्रिय परमपिता का सन्देश

ऐसी धर्म-ग्लानि की स्थिति में अब परमपिता परमात्मा शिव प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा कहते हैं—"हे वत्सो! अब मद्य पीना और पिलाना बन्द करो! अब उठो और मुझ से भर-भर कर ज्ञानामृत का प्याला पीओ जिससे स्थायी मस्ती और रूहानी नशा प्राप्त होगा और जन्म-जन्मान्तर दुःख, अशान्ति तथा चिन्ता का नाम-निशान भी नहीं रहेगा। हे वत्स! तुम तो देवता थे, और अब ज्ञान रूपी सोम अथवा अमृत पीकर पुनः अमर देवता पद प्राप्त करो, इन्द्रियों को जीतकर इन्द्रपद प्राप्त करो। **ईश्वरीय योग ऐसे आनन्द को देने वाला है कि जिससे कभी भी रंच भी क्लेश का प्रवेश जीवन में नहीं होता।** अब शराब रूपी भोग को छोड़कर योगी बनो! तुम इस शरीर रूपी देवालय में वास करने वाले देवता हो; अब से इस निकृष्ट वस्तु को अपने मुँह से न लगाओ…।"

१. यह संविधान के आर्टीकल ४७ में प्रादेशिक सरकारों के लिये निर्देशों में है।

२. महात्मा गाँधी ने कहा था कि स्वराज के चार स्तम्भों में से एक मद्यपान है।

जगदीश चन्द्र हसीजा, सम्पादक एवं प्रकाशक, १५१ ई, कमला नगर, दिल्ली ने गगन प्रिंटर्स, कृष्ण नगर दिल्ली-५१ से छपवाया, Regd. No. 10563/65-D (D) 178

मुम्बासा के प्रमुख भागों में एक विशाल शोभा यात्रा एवं झाकियां निकाली गई थीं। इस चित्र में एक सजे हुए ट्रक पर लक्ष्मीनारायण की झांकी एवं ब्र० कु० बहनें दिखाई दे रही हैं।

यह चित्र लुधियाना में आयोजित 'आध्यात्मिक मेला' के उद्घाटन अवसर का है। अतिरिक्त मुख्य प्रशासिका दीदी मनमोहिनी जी परमात्मा शिव का ध्वजारोहण करने के पश्चात वहां के बहन-भाइयों के साथ खड़ी हैं। उनके साथ पंजाब कृषि-विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० अमरीक सिह जी खड़े हैं। →

यह चित्र नासिक में आयोजित 'अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक प्रदर्शनी का है। वहां के प्रसिद्ध समाचारपत्र 'गावकरी' सम्पादक एवं प्रकाशक भ्राता दादा साहब पोलनीस प्रदर्शनी का उद्घाटन करने के पश्चात् अपनी राय लिख रहे हैं।

दाण्डेली से (Hubli) हुकीयाल में की गई प्रदर्शनी का उद्घाटन समारोह के कार्यक्रम में अध्यक्षीय भाषण ब्र०कु० वसवराजी कर रहे हैं। तथा मंच पर रामचन्द्र देशपांडे, आर० वी० वापशेरे, ब्र० कु० श्रीदेवी दायीं ओर एम० जी० हुणसवादकर, ब्र० कु० इन्दुमति बहन बैठी हैं।

यह चित्र नासिक सेवाकेन्द्र की ओर से कोपरगांव में आयोजित आध्यात्मिक प्रदर्शनी का है। इस अवसर पर आयोजित स्नेह मिलन के कार्यक्रम में वहां के उद्योगपतियों का स्नेह-मिलन मनाया गया जिसमें वहां के नगराध्यक्ष अपने विचार प्रकट ← कर रहे हैं। ब्र० कु० गीता व अन्य बहन भाई बैठे हैं।

यह चित्र अजमेर सेवा-केन्द्र द्वारा ब्यावर में लगाई गई आध्यात्मिक प्रदर्शनी का है। प्रदर्शनी का उद्‌घाटन करने के पश्चात् वहां के आई० टी० ओ०, व अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति मंच पर बैठे हैं। तथा ब्र० कु० सुकर्मा प्रवचन कर रही हैं। →

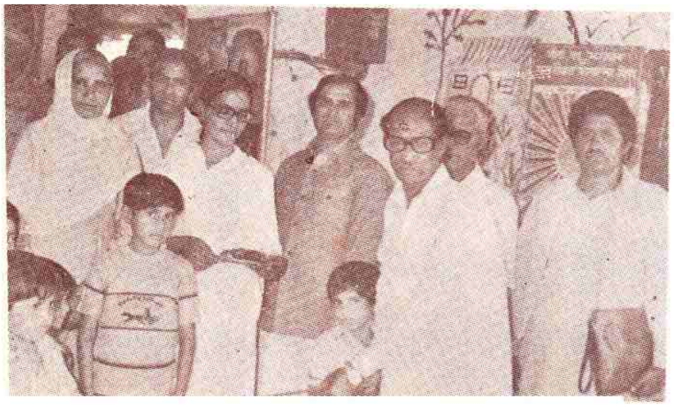

यह चित्र पठानकोट सेवा-केन्द्र द्वारा ज्वां वाला शहर में लगाई गई प्रदर्शनी के उद्‌घाटन के अवसर का है। वहां के प्रमुख डा० प्रकाश चन्द गुप्ता टेप काटकर प्रदर्शनी का उद्‌घाटन कर रहे ← हैं। साथ में अन्य अधिकारी व प्रतिष्ठित व्यक्ति खड़े हैं।

उज्जैन कुम्भ मेले के अवसर पर आयोजित "विश्व एकता आध्यात्मिक सम्मेलन" में विश्व धर्म संगम के प्रणेता मुनि सुशील कुमार जी सम्मानित अतिथि के रूप में पधारे हैं। उनके दायीं ओर मुख्य अतिथि सुप्रसिद्ध कवि एवं साहित्यकार भ्राता शिव मंगलसिंह 'सुमन' जी तथा बायीं ओर ब्रह्माकुमारी आरती बहन ↓ म० प्र० क्षेत्रीय इंचार्ज बैठी हुई हैं।

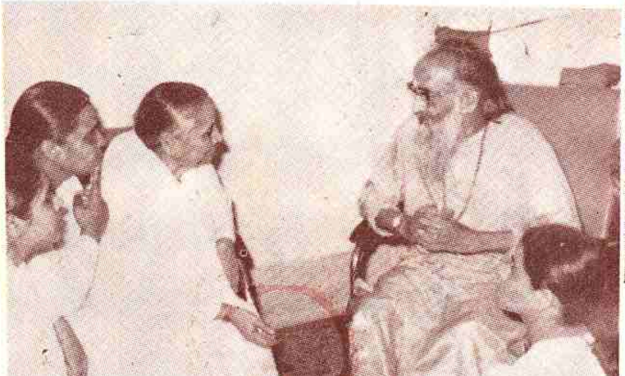

उज्जैन कुम्भ मेले के अवसर पर इन्दौर में स्वामी चिन्मयानन्द जी, ← ब्र० कु० मनमोहिनी (दीदी जी) से वार्तालाप करते हुए दिखाई दे रहे हैं।